

अंक : १२८

अक्टूबर-दिसंबर २०१४

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



कहानियां

मालती जोशी • डॉ. देवेंद्र सिंह • डॉ. निरुपमा राय
गोविंद उपाध्याय • विवेक द्विवेदी

आमने-सामने • सागर-सीपी • वातायन
विवेक द्विवेदी • डॉ. शांति सुमन • तरलीना नसरीन

१५ रुपये

अक्टूबर-दिसंबर २०१४
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

<p>प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद" संपादिका मंजुश्री संपादन सहयोग जय प्रकाश त्रिपाठी अश्विनी कुमार मिश्र अशोक वशिष्ठ हम्माद अहमद खान</p>	<p>कहानियां अपहरण - मालती जोशी ७ सर्वशिक्षा - डॉ. देवेन्द्र सिंह ११ कुसुममाला - डॉ. निरुपमा राय १७ कमज़ोर पार्टी - गोविंद उपाध्याय २३ कूलर - विवेक द्विवेदी २७</p> <p>लघुकथाएं सजा / नरेंद्र कौर छाबड़ा ३४ नाम में क्या रखा है ? / चित्त रंजन गोप ३७ स्त्री की जीत / उर्मि कृष्ण ४७</p> <p>गज़लें / कविताएं गज़ल / जमुर्द बेगम "शाद" १० मैं अपराजिता (कविता) / माधवी कपूर १६ मर जाणियां (कविता) / जसप्रीत कौर "फलक" १९ कविता / डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव २२ गज़ल / डॉ. दीप बिलासपुरी ३३ दो गज़लें / नवीन माथुर "पांचोली" ३४</p> <p>स्तंभ "कुछ कही, कुछ अनकही" २ लेटर बॉक्स ४ "आमने-सामने" / विवेक द्विवेदी ३५ "सागर-सीपी" / डॉ. शांति सुमन ३९ "बाइस्कोप" (सविता बजाज) / सुधा शिवपुरी ४४ "वातायन" / तस्लीना नसरीन ४८ पुस्तक-समीक्षा ५०</p>
<p>संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक</p> <p>● सदस्यता शुल्क ● आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु., वार्षिक : ५० रु., (वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है) कृपया सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.</p> <p>● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ● ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८. फोन : २५५१ ५५४१, ९८९९१६२६४८</p> <p>e-mail : kathabimb@yahoo.com www.kathabimb.com</p> <p>● न्यूयॉर्क संपर्क ● Naresh Mittal (M) 845-304-2414 Namit Saksena (M) 347-514-4222</p> <p>● शिकागो संपर्क ● Tulika Saksena (M) 224-875-0738</p>	
<p>एक प्रति का मूल्य : १५ रु. कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें. (सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)</p>	<p>आवरण चित्र : तूलिका सक्सेना "फॉल" ऋतु का एक मनोहारी चित्र, नैपरविल (शिकागो) "कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.</p>

कुछ कही, कुछ अनकही

यह २०१४ का अंतिम अंक (१२८वां) है। इस अंक के साथ “कथाबिंब” के प्रकाशन का एक और वर्ष पूरा हुआ। बहुत कोशिशों के बाद भी अंक के प्रकाशन में थोड़ा विलंब हुआ है। इसका मुख्य कारण समय पर पर्याप्त विज्ञापनों का न मिल पाना है। आज के संचार-युग में हर किसी के पास मोबाइल फ़ोन है। इस बावत अनेक फ़ोन आये कि अंक कब आ रहा है। “कथाबिंब” के “कहानी-विशेषांक” की सर्वत्र सराहना हुई, फलस्वरूप डाक से व ई-मेल से प्रकाशनार्थ आने वाली रचनाओं की आवक बढ़ गयी है। इस संदर्भ में लेखकों से निवेदन है कि रचनाएं आप ई-मेल से अवश्य भेजें। पहला तो यह कि रचनाएं दोनों ही पीडीएफ व डॉक फाइल में हों। कहानी के निर्णय के लिए कम से कम कृपया एक माह का समय हमें दें। “कथाबिंब” के लिए खास तौर पर, अलग से कहानी भेजें, एक साथ कई पत्रिकाओं के लिए रचना भेजने पर विचार करना संभव नहीं होगा। “कथाबिंब” के पाठकों की संख्या में भी अभिवृद्धि हुई है, आजीवन सदस्यों की संख्या ३०० से ऊपर हो गयी है। “कथाबिंब” के माध्यम से सदा से, हमारा प्रयास रहा है कि कम मूल्य पर अच्छा साहित्य पाठकों को उपलब्ध हो। इसी कारण पिछले १५-२० सालों से पत्रिका के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं की गयी है। वर्ष २०१४ के सभी अंकों में, कुल मिलाकर ४२ कहानियां प्रकाशित हुई हैं। इस बार “कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१४” के लिए अभिमत भेजने हेतु “मत-पत्र” नहीं छापा जा रहा है। पाठकों से अनुरोध है कि वे “पच्चीसवें माले का फ्लैट” और “उसका सच” छोड़कर शेष ४० कहानियों पर, पत्र या मेल द्वारा, अभिमत का अपना क्रम भेजें। इस बार निर्णायकों का एक पैनल और पाठक मिल कर कहानियों के पुरस्कारों का चयन करेंगे। दो सर्वश्रेष्ठ (१००० रु.), चार श्रेष्ठ (७५० रु.) व दस को उत्तम (५०० रु.) पुरस्कार दिये जायेंगे। पाठकों से अनुरोध है कि वे शीघ्र अपने अभिमत हमें भेजें। वर्ष के सभी अंक आप “कथाबिंब” की वेबसाइट पर पढ़ सकते हैं। वेबसाइट के अलावा “कथाबिंब” को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है। आवरण पर नामित लेखकों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को “टैग” करें। इससे इनकी रचनाओं की “पहुंच” का दायरा और व्यापक होगा।

अब इस अंक की कहानियों पर टिप्पणी -- पांचों कहानियों के रचनाकार “कथाबिंब” के पाठकों के लिए जाने-पहचाने हैं। अपनी सदाशयता के चलते सभी ने अपनी बेहतर व स्तरीय कहानी दी है। मालती जोशी की कहानी “अपहरण” में ट्रेन यात्रा के दौरान अचानक ही राऊलकेला का नाम सुनकर नायिका प्रलेश बैक में चली जाती है। जीवन में बहुत आगे निकल जाने के बाद भी उसके मन में कहीं न कहीं एक कसक रह ही गयी है, जिसकी टीस शेष है। अगली कहानी “सर्वशिक्षा” के माध्यम से डॉ. देवेन्द्र सिंह ने हमारे देश के तथाकथित सर्वशिक्षा अभियान की सही स्थिति उजागर की है। शिक्षा का अधिकार तो सरकार ने दे दिया पर स्कूलों की स्थिति कैसी है ? न बच्चे हैं और न ही शिक्षक। ढहती दीवारों। दोपहर के खाने (मिड-डे मील) के मोह में बच्चे स्कूल आते हैं और जैसा-तैसा खा कर अपनी भूख मिटाते हैं। शेक्सपीयर का कहना था – “वाट इज़ देयर इन ए नेम ?” लेकिन इसके विपरीत सच्चाई यही है कि नाम में ही आज सब कुछ है। विशेषकर जब किसी के नाम से उसके चरित्र को जोड़ने की कोशिश की जाती है। डॉ. निरुपमा की कहानी “कुसुममाला” की नायिका का, अंत समय तक भी कोई नाम नहीं जानना चाहता। लेकिन यहां पहुंच कर कहानी एक अलग मोड़ लेती है। अगली कहानी “कमज़ोर पार्टी” (गोविंद उपाध्याय) में एक पति-पत्नी की शारीरिक कमियों के कारण उनके बच्चे नहीं हो सकते। पत्नी बच्चा गोद लेने को तैयार नहीं है। जीवन में इस अभाव के चलते आदमी को शराब पीने की लत लग जाती है और वह अंत तक इससे छुटकारा नहीं पा सका। आम भारतीय नागरिकों की समस्या है कि सीमित आय में घर-परिवार की ज़रूरतों को कैसे पूरा किया जाये ? विवेक द्विवेदी की कहानी “कूलर” की मां पढ़ी-लिखी नहीं है, लेकिन उसने ज़माना देखा है। वह बड़ी बहू पर हमेशा गुस्सा करती रहती है। पर यह सब ऊपर-ऊपर है। दरअसल उसका हृदय एक कूलर की तरह है जो सबको ठंडक पहुंचाता रहता है।

वर्ष २०१४ चुनावों का साल रहा है। पहले लोकसभा चुनाव फिर कुछ उप-चुनाव और बाद में महाराष्ट्र, हरियाणा, झारखंड और जम्मू-कश्मीर में विधान सभा चुनाव संपन्न हुए। उप-चुनावों में भले ही भाजपा को अच्छा प्रतिसाद न मिल सका किंतु सभी विधानसभा चुनावों में भाजपा ने बढ़त हासिल की। हरियाणा और झारखंड में उसे स्पष्ट बहुमत मिला, महाराष्ट्र में भी अंततः शिवसेना के साथ मिल कर एक स्थायी सरकार बन सकी। जम्मू-कश्मीर में किसी भी दल को बहुमत न मिलने के कारण फिलहाल गवर्नर रूल लगा है, लेकिन ऐसे स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं कि शीघ्र ही पी. डी. पी. और भाजपा मिलकर सरकार बनायेंगे। इन राज्यों में कॉन्ग्रेस तीसरे या चौथे स्थान पर रही है। फरवरी २०१५ के प्रथम सप्ताह

में दिल्ली में भी चुनाव होने हैं. यहां भी कॉन्ग्रेस का कहीं पता नहीं है. सीधी लड़ाई आप और भाजपा में है. अब देखना यह है कि ऊंट किस करवट बैठता है. १२७ वर्ष पुरानी कॉन्ग्रेस का यह हाल क्यों हुआ इस पर पार्टी के नेताओं को गंभीरता से सोचना चाहिए किंतु बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे ? ज्यों ही कोई प्रयास करता है उसे बागी करार कर दिया जाता है.

भारत के गणराज्य बनने के बाद शुरू में विधान सभा और लोकसभा के चुनाव साथ-साथ हुआ करते थे. किन्हीं कारणों से, अलग-अलग समय पर विधान सभाएं भंग होने के कारण यह परंपरा समाप्त हो गयी है. इससे, निरंतर समय, श्रम और धन का अपव्यय होता है. सभी नेता और राजनीतिक दल पूरे साल चुनावी गणित में उलझे रहते हैं. सत्ता कैसे हाथ में रहे इसके लिए नये-नये जातीय समीकरण और हथकंडे ढूंढे जाते हैं. आज देश में भाजपा एक बड़े दल के रूप में उभरी है. अन्य दलों की सहमति से एक संयुक्त अधिवेशन बुलाकर पुनः इस लोकतांत्रिक परंपरा की स्थापना की जा सकती है. पिछले ७-८ महीनों में नयी सरकार ने ऐसे बहुत सारे निर्णय लिये हैं जिनके दूरगामी प्रभाव अवश्य होंगे. "स्वच्छता अभियान," "जन-धन योजना," "सांसद ग्राम योजना," "बेटी बचाओ, देश बचाओ" जैसी बहुत सारी स्क्रीमें शुरू की गयी हैं. चाहे शौचालयों की आवश्यकता की बात हो या युवाओं में नशे की प्रवृत्ति, छोटी-छोटी किंतु महत्वपूर्ण बातों के प्रति प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी लोगों को जागरूक कर रहे हैं. "मन की बात" कार्यक्रम के माध्यम से प्रधानमंत्री जनता से संवाद करते हैं. यह सब बहुत अच्छा है. लेकिन आम आदमी महंगाई और भ्रष्टाचार से निजात चाहता है. वह चाहता है कि रोजमर्रा के जीवन-यापन में आने वाली तकलीफों और कठिनाइयों से उसे जल्दी छुटकारा मिले. चुनाव प्रचार के दौरान विदेशी कालाधन एक बड़ा मुद्दा था. पिछले तीन-चार सालों में जन-लोकपाल आंदोलन ने भी आम आदमी के मन में आशा जगायी. इसी आंदोलन से "आप" का जन्म हुआ किंतु सारे देश में मुंह की खाने के बाद "आप" सिमटकर मात्र दिल्ली की पार्टी बनकर रह गयी है और अब प्रयास में है कि किस प्रकार छोड़ी हुई गद्दी हाथ में आ जाये. कोई तो केजरीवाल जी से पूछे कि भूतपूर्व मुख्यमंत्री जी जन-लोकपाल बिल का क्या हुआ ?

विदेशी कालाधन आने में कई तकनीकी समस्याएं बतायी जा रही हैं. यदि भविष्य में कभी यह कालाधन थोड़ा कुछ आया भी तो सीधे किसी के खाते में नहीं जाने वाला. ये सब मन को बहलाने-फुसलाने वाली बातें हैं. लेकिन विदेशी कालेधन से कहीं ज्यादा देश में ही लोगों की तिजोरियों में जमा कालेधन को बाहर लाने के लिए तो तुरत-फुरत कारगर उपाय किये जा सकते हैं. सबसे अधिक कालाधन लोगों के रहने के लिए मकान बनाने वाले छोटे-बड़े भवन निर्माता पैदा करते हैं. यह सर्वविदित है कि मकान के खरीदने के लिए ६० : ४० या ५० : ५० के अनुपात में पैसे की मांग की जाती है. इससे स्टैप ड्यूटी की चोरी तो होती ही है. साथ ही दो नंबर के पैसे का आगे गलत-सलत कामों में दुरुपयोग होता है. भवन निर्माण उद्योग अकूत कालाधन उत्पादित करता है, इसकी गणना नहीं की जा सकती. इसी तरह फ़िल्म उद्योग की सारी नींव ही कालेधन पर खड़ी हुई है, यह बात भी किसी से छिपी नहीं है. नामी फ़िल्म कलाकारों को करोड़ों में पैसा दिया जाता है. यह पैसा कहां से आता है और कहां जाता है किसी को नहीं मालूम. हर छोटे-बड़े धंधे वाला बिल और बिना बिल की बिक्री करता है. सेल्स टैक्स की चोरी करता है. सरकार चाहे तो एक समय सीमा देकर पांच सौ और हजार रुपयों के नये नोट जारी करके सारा कालाधन बाहर ला सकती है. महंगाई को कम करने के लिए भी कई क्रम उठाये जा सकते हैं. सबसे पहले तो जमाखोरी को अपराध की ऐसी धारा के अंतर्गत लाया जाये कि जमाखोरों को जमानत ही न मिल सके. आज बाजारों में सामान भरा पड़ा है. लेकिन गुणवत्ता या मूल्य पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है. सरकार अधिकतम कीमत तय कर देती है, इसका आधार स्पष्ट नहीं है. लागत और मूल्य में क्या संबंध है ? दो रुपये लागत की चीज़ की कीमत बीस रुपये क्यों होती है ? अपेक्षा यह की जाती है कि ग्राहक मोलभाव करके स्वयं कीमत कम कराये, यह असंभव है. टी. वी. के विज्ञापन महंगाई का सबसे बड़ा कारण हैं. हर विज्ञापन में फ़िल्म कलाकार क्यों होते हैं ? अमिताभ बच्चन नवरत्न तेल या कैडवरी चॉकलेट बेचेंगे तो वह महंगी तो होगी ही. शाहरुख खान, अक्षय कुमार, हेमा मालिनी, करीना कपूर, प्रियंका चोपड़ा या ऐसी ही फ़िल्मी हस्तियां विज्ञापन करेंगी तो सामान तो महंगा होगा ही. अप्रत्यक्ष रूप में विज्ञापनों में इनकी मौजूदगी का खर्चा हम और आप उठाते हैं. टी. वी. अब महज़ "बुद्ध डब्बा" नहीं रह गया है, यह पूरी तरह "झूठ का डब्बा" हो गया है. **चौबीसों घंटे यह हमारे ऊपर दोहरी मार कर रहा है. पहले बिना सिर-पैर के सीरियल दिखाकर यह आपको पूरी तरह असंवेदी बनाता है, साथ में बार-बार विज्ञापन दिखा कर उल्टे-सीधे सामान की बिक्री बढ़ाता है. वैज्ञानिक आधार वाले विज्ञापनों का कोई आधार नहीं होता.** टूथपेस्ट के प्रभाव को जांचने के लिए "जर्मो-मीटर" (!) बना ही नहीं. सिगरेट के विज्ञापनों पर पाबंदी है पर गुटका के विज्ञापनों पर कोई रोक नहीं. शराब के विज्ञापन भी धड़ल्ले से चोरी-छुपे दिखाये ही जा रहे हैं. एक घंटे में कितने समय विज्ञापन दिखाना चाहिए, इस पर नियंत्रण होना चाहिए. विज्ञापन के साथ दिखायी चेतवनी इतने छोटे अक्षरों में होती है और इतने कम समय के लिए दिखायी जाती है कि कोई पढ़ नहीं सकता. आइए, हम उम्मीद करें कि "अच्छे दिन" दूर नहीं हैं.



लेटर-बॉक्स



►► 'कथाबिंब' का अंक १२७ मिला. हर अंक बहुमूल्य होता है. आवरण चित्र से लेकर अंतिम पेज तक, एक-एक शब्द अनूठा, दिमाग को सकून देता है. अब मैं (२४ मई २०१४) की बात करती हूं. वह शाम शायद मैं जीवन भर न भूल सकूंगी. इतना आदर, इतना सत्कार मुझे जैसी एक छोटी सी लेखिका और अभिनेत्री को मिला. सभागृह में मेरे नाम के बड़े-बड़े पोस्टर लगाये गये. स्टेज पर, बड़ी हस्तियों के साथ मुझे बैठाया. मुझे दीप प्रज्वलित भी करवाया.

'कथाबिंब' ने ३५ वर्ष पूरे किये. बहुत-बहुत बधाइयां. मुझे प्रोग्राम में बुलाया मैं अहसानमंद हूं. लेकिन प्लीज मुझे एक आम लेखिका ही रहने दीजिए.

प्रिय पाठकों, आपसे निवदेन है नया साल आ रहा है. किसी भी लेखक या लेखिका को कोई ऐसे शब्द न कहें जिनसे कि भीतर मन में दुख हो. हर व्यक्ति महान लेखक नहीं बन सकता. सबकी अपनी-अपनी शैली होती है. जो व्यक्ति के स्वभाव, उसका जीवन, रहन-सहन से बनती है. इसलिए ज्यादा त्रुटियां निकालना भी ठीक नहीं. एक शेर है —

**मंदिर तोड़ो, यह तो बुतखाने हैं,
लेकिन किसी का दिल मत तोड़ो,
यह घर है खास खुदा का.**

मैं आप सबसे बहुत स्नेह करती हूं. आपकी वजह से ही तो मेरी कला की परख हो रही है. आप और संपादक जी जब तक चाहेंगे मैं लिखती रहूंगी. जब तक मेरी सांस की डोर मेरी कलम से बंधी है. नये साल की ढेरों शुभकामनाएं और ढेर सारा प्यार, स्नेह.

— सविता बजाज

पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर, बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९२.

►► 'कथाबिंब' का १२७ वां अंक (जुलाई-सितंबर २०१४) प्राप्त हुआ. इस अंक की पांच कहानियां. कमल कपूर की 'न भूतो, न भविष्यति' एक नरकवासिनी गुलाब देई की कहानी है, जो दूसरों के नर्क को स्वर्ग में तब्दील कर देती है. ताराचंद मकसाने की 'थैक्यू वेरी मच' एक सेवा निवृत्त अनुशासनप्रिय बैंक मैनेजर रविकुमार की कथा है, जिसकी सेवा निवृत्ति की दिनचर्या उसे निठल्ला, निकम्मा और नाकारा बना देती है. एक अनाथ आश्रम 'आशा ट्रस्ट' से जुड़ने के बाद रवि में आश्चर्यजनक परिवर्तन आता है और वे पुनः सेवाकालीन अप-टू-डेट रवि कुमार में रूपांतरित हो जाते हैं. रिया शर्मा की 'सर्प दंश' एक स्त्री की सनातन कथा है. वह कितनी ही पढ़ी लिखी हो उसे घर के कामकाज में झोंक दिया जाता है और पुरुष पुरातन सर्वतंत्र स्वतंत्र जीवन यापन करता है. स्त्री के गृह कार्य में संलिप्तता की प्रशंसा के शब्द उसके लिए सर्पदंश हैं, स्त्री जीवन पर्यंत सर्पदंशित रहती है. निरुपम की 'अतृप्त मोक्ष' एक कहानी से ज्यादा दार्शनिक संवाद है, संवाद भी तब सार्थक होता है जब दोनों समतल हों, यहां तो संवाद के नाम पर

एक साध्वी का अनंत उवाच है. धर्मेन्द्र कुसुम की 'धोखा' में स्त्री तो एक मदारी के धोखे का शिकार होती है और मिथ्या जड़ी-बूटियां खरीद लाती है जबकि पुरुष को एक शाश्वत राजनेता से धोखा मिलता है जो जनता को सब्ज बाग दिखा कर पांच सालों के लिए ओझल हो जाता है. कथाकार ने राजनैतिक धोखे को बड़ा धोखा सिद्ध किया है, यही उसका अभीष्ट है.

— हितेश व्यास

बी-४०६, रवि पार्क, हांडेवाडी रोड,
हडपसर, पुणे-४११०२८.

►► 'कथाबिंब' का आजीवन सदस्य बनने से नियमित अंक मिल रहे हैं. मैं रचनाओं को पढ़कर आनंदित और उत्साहित होता रहता हूं.

पत्रिका ने ३५ वर्षों की साहित्यिक यात्रा में हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान और स्थान बना लिया है. रचनाओं का समन्वय मन-भावन होता है. जनवरी-जून २०१४ अंक (कहानी विशेषांक) पढ़ा इसमें ३२ कहानियां, ९ लघुकथाएं, १२ गज़लें, कविताएं व मुक्तक हैं. इस

विशेषांक में स्तरीय रचनाएं हैं। 'कुछ कही, कुछ अनकही' में तो आप दिल की गहराई में उतरते हैं। इस तरह यह अंक संग्रहणीय है। डॉ. रूपसिंह चंदेल अतिथि संपादक को नमस्कार जिन्होंने 'कथाबिंब' को आधुनिक हिंदी कहानी के इतिहास में संग्रहणीय बना दिया है। मैं पत्रिका से जुड़कर अपने को धन्य महसूस कर रहा हूँ।

- राजेंद्र प्रसाद मधुबनी

फ्रेंड्स कॉलोनी, वार्ड नं. १४, मधुबनी,
बिहार-८४७२११

► 'कथाबिंब' के जुलाई-सितंबर २०१४ अंक में संपादकीय में मोदी सरकार के आगमन के तत्काल बाद उनकी क्रियाशीलता एवं भावी योजना का सच्चा चित्र खींचा गया है। मोदी जानते हैं कि यहां संभावनाएं अनंत हैं, बस उन्हें उजागर करने की जरूरत है। दुष्यंत कुमार याद आ जाते हैं : 'एक चिंगारी कहीं से दूँड़ लाओ दोस्तो, इस दिए में तेल से भींगी हुई बाती तो है.'

कबीर ने फरमाया था — 'दुई जगदीश कहां ते आये, कहुं कौनै भरमाया/अल्ला, राम, करिम, केशव, हरि, हजरत नाम धराया.' और यहां देवी नागरानी कहती हैं — 'ये हिंदू हैं, ये मुस्लिम हैं, ये सिख ईसाई हैं देवी/लड़ाने को हमें क्यों लोग इनका नाम लेते हैं.'

नारी में छिपी मां की ममता, वत्सलता का कितना भव्य चित्र उकेरा गया है — 'मां, केवल मां होती है.' (लक्ष्मी रूपल).

अशोक भाटिया की 'जन्म' कविता में लड़की के जन्म होने के प्रभाव की व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया है। इंसान रहबर की खोज में व्यस्त है पर निराशा पाता है। 'दौर, जुल्म व सितम का जारी है / कोई रहबर कहां नजर आया.' सारी रचनाओं पर टिप्पणी लिखना हो तो पत्र बहुत लंबा हो जायेगा।

- प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

वृंदावन, राजेंद्र पथ, धनबाद-८२६००१

► 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर २०१४ अंक का संपादकीय न केवल साहित्यिक कर्म के लिए बल्कि भारतीय राजनीति का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत करने के लिए जाना जायेगा। रचनाओं का चयन उनकी स्तरीयता

को ध्यान में रखकर सावधानी के साथ किया गया है। कमल कपूर की कहानी 'न भूतो, न भविष्यति' मध्यमवर्गीय आरामतलबी व मतलबपरस्ती तथा निम्न वर्ग के मेहनतकश इंसानों की कशमकश और खुदारी की दास्तान है। ताराचंद मकसाने की कहानी 'थैक्यू वेरी मच' इस हकीकत को रेखांकित करती है कि औरों के लिए कुछ करना ही मन के रीतेपन और आसपास के बेगानेपन को भगाने का तरीका है। धर्मेन्द्र कुसुम अपनी कहानी 'धोखा' में आमजन के साथ हुए छल की बात करते हैं। दरअसल राजनीति धोखा और बारंबार छलकरने की कला में बाकी सब को काफ़ी पीछे छोड़ चुकी है। कहानी के पात्र रामलाल के मन की बात का मन में ही रह जाना इस सच्चाई को दर्शाता है।

सविता बजाज का आत्मकथ्य व डॉ. चंद्र प्रकाश द्विवेदी से साक्षात्कार पठनीय हैं। कमलेश भारतीय की लघुकथा 'डर' वर्तमान आर्थिक प्रणाली में जिसमें हर इंसान एक उपभोक्ता के सिवा कुछ नहीं माना जाता है, एक आम हिंदुस्तानी की हैसियत प्रदर्शित करता है। इससे पूर्व जनवरी-जून २०१४ के संयुक्तांक में हिंदी कहानी के समकालीन परिदृश्य का काफ़ी हद तक चित्रांकन हुआ। 'कथाबिंब' की यह यात्रा जारी रहेगी इसका पूर्ण विश्वास है।

- मनीष कुमार सिंह

कमरा नं. १४८-बी, परिवहन भवन,
संसद मार्ग, नयी दिल्ली-११०००१.

► 'कथाबिंब' जुलाई-सितंबर २०१४ का अंक प्राप्त हुआ। कहानी विशेषांक पर कुछ प्रवासी कथाकारों को अपनी प्रतिक्रिया अमेरिका, पत्रों के माध्यम से भेजी थी, आपने इस बार के अंक में अपने संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' में इसका जिक्र भी किया है।

वर्तमान समय में पत्रलेखन विधा संचार क्रांति के इस युग में दम तोड़ रही है। मैंने इस विधा को बनाये रखने के लिए रचनाकारों के साथ पत्राचार की परंपरा बनाये रखी है। यही पत्र आनेवाले कल की धरोहर होंगे। आज भी मैं जब हिंदी के प्रतिष्ठित रचनाकारों के पत्रों को पढ़ता हूँ तो मेरे सामने उनका व्यक्तित्व एवं कालखंड सामने आ खड़ा होता है। ये पत्र हमारे लिए अमूल्य निधि हैं। कहानी अंक संग्रहणीय अंक है, सभी कहानियां पठनीय व हृदयग्राही हैं।

इस बार के अंक में भी कहानियों ने मेरे मानसपटल पर गहरा प्रभाव छोड़ा है। खासकर पहली कहानी 'न भूतो, न भविष्यति' पढ़ते-पढ़ते भाव विभोर हो उठा और अपनी प्रतिक्रिया से लेखिका कमल कपूर को भेजने के लिए कलम उठानी पड़ी। डॉ. रूपसिंह चंदेल की कहानी पिछले विशेषांक में पढ़ी थी। लघुकथाएं 'डर', 'आईना', 'मां केवल मां होती है', 'गांव का एक दिन' भी अच्छी लगी हैं।

'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपकी संपादकीय टिप्पणियां समसामयिक थीं। 'आमने-सामने' में सविता बजाज के आत्म कथ्य ने उनके साहित्यिक एवं थिएटर, फ़िल्म जगत के विविध पक्षों से रूबरू करवाया।

मैं 'कथाबिंब' के पुराने अंक खरीदना चाहता हूं, क्या ये सभी अंक मुझे आपके यहां से प्राप्त हो सकते हैं? कृपया लौटती डाक से अवगत करवा कर कृतार्थ करें। (यह संभव अवश्य है पर काफ़ी मेहनत करनी पड़ेगी। अलग से समय निकालना पड़ेगा- सं.)

सहयोग के लिए आभारी रहूंगा। 'कथाबिंब' की यह यात्रा अनवरत आगे बढ़ती रहे। यही मेरी हार्दिक कामना है।

— रत्न चंद निर्झर

गांव व डा. राजगढ़,

जिला सिरमौर-१७३१०१(हि. प्र.)

►► परिवार मनुष्य के जीवन का केंद्र है। उसके अधिकांश सुख-दुख और सपने इसी से जुड़े हैं। जीवन भर वह इसी संस्था में जीता मरता है। इसके उजले और अंधेरे पक्षों से जुड़ी कहानियों की प्रस्तुति 'कथाबिंब' की विशेषता है।

जुलाई-सितंबर अंक में कमल कपूर जी की कहानी 'न भूतो, न भविष्यति' में शुभ्रा चौधरी का यह कथन कि... 'मैं मतलबी, आरामपरस्त और अकृतज्ञ शुभ्रा चौधरी थी। समर्पित और निःस्वार्थ गुलाब नहीं और मैं कभी गुलाब बन भी नहीं सकती थी। मैं क्या मेरे सामाजिक दायरे में दूर-दूर तक न कभी कोई गुलाब जैसा हुआ और न कभी होगा.'

... इस कहानी को आत्मलोचना के साथ संदेश परक बनाता हुआ विराम पर लाता है। ताराचंद मकसाने ने भी पठनीय और मार्मिक कहानी दी है, 'थैक्यू वेरी मच', रिया शर्मा की कहानी 'सर्पदंश' — सब औरतें पारिवारिक क्षोभ और खीज के बावजूद परिवार में ही अपना अस्तित्व पाती हैं। यह भी एक अच्छी कहानी है। निरुपम जी की कहानी 'अतृप्त मोक्ष' एक हल्की-सी फंतासी लिये जीवन-मृत्यु, भोगेच्छा-वैराग्य, खोज और प्राप्ति-अप्राप्ति की बढ़िया

कहानी है। इसके संवाद महत्वपूर्ण हैं जिनमें आध्यात्मिकता और सांसारिकता की द्वंद्वात्मक स्थिति उभरती है। इस कहानी का अंत सांकेतिक होने से इसमें एक जान आ गयी है। धमेंद्र कुसुम की कहानी 'धोखा' भी उल्लेखनीय है जिसमें ठगी और भोलेपन की दोहरी कथायुक्ति है। एक ओर जादूगर और भोली स्त्री तो दूसरी ओर नेता और निष्कपट समाजसेवी। इसमें जहां पुरुष का साहस दबा है, स्त्री का साहस उभरकर आया है। अंक की लघुकथाएं भी अच्छी हैं। देवी नागरानी की गज़ले और आवरण पृष्ठ बढ़िया है।

— केशव शरण

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी-२२१००२.

►► 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१४ अंक बहुत अच्छा लगा। बधाई. 'सागर-सीपी' में डॉ. चंद्र प्रकाश द्विवेदी जी के बारे में पढ़कर बहुत अच्छा लगा। उनके विख्यात धारावाहिक 'चाणक्य' एवं 'उपनिषद गंगा' की प्रशंसिका भी हूं। 'आमने-सामने' में सविता जी की सरलता एवं साफ़गोई से बेहद प्रभावित हुई। मुख्यपृष्ठ के चित्र तो कमाल के रहते ही हैं। संपादकीय में आपका यह कथन बेहद सारगर्भित एवं सटीक है कि देश के विकास में हर किसी को अपनी भूमिका निभानी होगी। जनवरी-जून २०१४ का संयुक्तांक भी बहुत प्रभावी था। अच्छी कहानियां पढ़ने को मिलीं। विशेषकर 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट', 'उत्तराधिकारी', 'धिना...धिना...धिनाधिना...', 'अनचाहे मोड़' इत्यादि। आपका एवं रूपसिंह जी का श्रम मुखर हो उठा है... बधाई. जुलाई-सितंबर अंक की कहानियां भी पठनीय हैं। कमल कपूर की ... 'न भूतो, न भविष्यति...' वर्तमान के सत्य को प्रदर्शित करती मार्मिक कहानी है। 'सर्पदंश' में ध्वनित विवशता का दंश चुभता है... अंतिम वाक्य — स्त्री पीड़ा की प्रतिध्वनि है पर आज की स्त्री को उससे उभरने का यथाशक्ति प्रयास ज़रूर करना होगा। तभी 'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता' की परिकल्पना सार्थक होगी। अन्य दोनों कहानियों का कथ्य भी विभिन्न विषयवस्तु को समेटता यथार्थ चिंतन का आइना है। इतने अच्छे अंक हेतु हार्दिक बधाई एवं असीम शुभकामनाएं स्वीकारें।

— डॉ. निरुपमा राय

उर्सलाइन कान्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,

पूर्णिमा-८५४३०१ (बिहार).

अपहरण

✍ मालती जोशी

गड़ी बड़ी देर से एक ही स्थान पर रुकी हुई थी. मैंने चादर से बाहर मुंह निकाल कर देखा. सामनेवाली बर्थ पर श्रीमान उठंगे से बैठकर खिड़की के पार देख रहे हैं. हालांकि ए. सी. कंपार्टमेंट की खिड़कियों से बाहर का ज्यादा कुछ नज़र नहीं आता.

“कौन-सा स्टेशन है?” मैंने उनींदी आवाज़ से पूछा.

“शायद राऊरकेला है.”

“क्या...”

“कितनी ज़ोर से चीख रही हो. सुनाई नहीं दिया क्या?”

“सुनाई नहीं दिया तभी तो...”

“भगवान! क्या तुम भी अपनी बुआजी की तरह ऊंचा सुनने लगी हो. दया करना देवी जी. वो चार दिन के लिए आयी थीं तो मेरा गला सूख गया था. तुम्हारे साथ तो मैं पागल हो जाऊंगा.”

“आप हैं न मुझे एक अच्छा सा हीयरिंग एड लाकर देना? फिर कोई परेशानी नहीं होगी.”

“फालतू शौक्र मत पालो. कहो तो मैं तुम्हारे लिए हीरे के एक जोड़ी टॉप्स और बनवा दूंगा. पर अपने कान सलामत रखो.”

हम लोगों की चुहल शुरू हो गयी थी. याद ही नहीं रहा कि हम लोग घर में नहीं हैं, ट्रेन में हैं और इस समय रात के तीन बज रहे हैं. अपनी भूल का अहसास तब हुआ जब ऊपर लेटी महिला ने कंबल से मुंह निकाल कर नीचे की ओर झांका. उस नीम अंधेरे में मैं उसके चेहरे के भाव तो पढ़ नहीं पायी, पर नींद में खलल पड़ने पर उसे जो कोफ़्त हुई होगी उसका अंदाज़ा मुझे था. लोग इतना ढेर सारा किराया अपने आराम के लिए ही तो देते हैं. मेरी उम्र का लिहाज़ करके उसने कुछ कहा नहीं पर उसका इस तरह नीचे झांकना ही काफ़ी था. मैं चुपचाप करवट बदल

कर लेट गयी और चादर सिर तक खींच ली. इन्होंने एक दो बार कुछ कहना चाहा पर मेरी ओर से जवाब न पाकर चुप हो गये.

एक अरसे बाद ट्रेन में बैठी हूँ. इस बीच ट्रेन के क्रायदे क्रानून लगभग भूल ही चुकी हूँ. आजकल ऐसा हो गया है कि पास में जाना हो तो कार से चले जाते हैं. लंबा सफ़र हो तो हवाई जहाज़ को ही तरजीह देते हैं. मुंबई से कलकत्ता इतना लंबा सफ़र तो मैं ट्रेन से हरगिज न करती. पर बालहठ के आगे झुकना पड़ा.

हुआ यह कि शिशिर की बिटिया ने कैलीफ़ोर्निया में ही एक हिंदुस्तानी दूल्हा ढूंढ़ लिया था. पर दोनों की ज़िद थी शादी भारत में ही करेंगे और पारंपरिक तरीके से करेंगे. हिंदुस्तानी शादी का ग्लैमर ही कुछ खास है. तभी तो कई बार विदेशी लोग भी यहां आकर शादी रचाते हैं.

शादी तो गोवा के एक रिसोर्ट में होनी है. पर वरपक्ष का इसरार था कि सगाई की रस्म कलकत्ते में हो ताकि परिजन भी होने वाली बहू को देख लें. सबका तो गोवा जाना संभव नहीं है. इस कार्यक्रम के लिए अमृता भी कैनेडा से सपरिवार आयी हुई है. तो नाती पोतों ने ज़िद की कि ट्रेन से चलेंगे ताकि ‘कंट्री’ को ठीक से देख सकें. वैसे मैं जानती हूँ कि भारतीय रेल में एक बार सफ़र करने के बाद ही वे हमेशा के लिए तौबा कर लेंगे.

पर एक बार तो भुगतना ही है. अत्यंत कृपावत होकर हमारे लिए ए. सी.-टू की टिकिटें खरीदी गयीं. बाक़ी जनता ए. सी.-थ्री में सफ़र कर रही है. बच्चों का तो स्लीपर में जाने का मन था. पर मां-बाप ने डपट दिया इसलिए चुप हो गये.

मैंने सिर तक चादर तो ओढ़ ली थी, पर नींद तो कोसों दूर जा चुकी थी. ‘राऊरकेला’ मेरे कानों में हथौड़े की तरह बज रहा था.

इस नाम के साथ मेरा पहला परिचय तब हुआ जब

जन्म : ४ जून १९३४, औरंगाबाद (पूर्व हैदराबाद राज्य), महाराष्ट्रीयन परिवार में.
एम. ए. हिंदी, आगरा वि. वि. (१९५६)



प्रकाशन : हिंदी की लगभग सभी लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां एवं लघु उपन्यास प्रकाशित. ४० से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित. उपन्यास एवं विविध कथा संग्रहों के अलावा ११ मराठी कथा संग्रह, एक गीत संग्रह भी इसमें शामिल हैं.

अनुभव : हिंदी की भांति मालती जी का मराठी भाषा पर भी अधिकार है और वे स्वयं अपनी कहानियों का मराठी में रूपांतरण करती हैं. उनकी कहानियों का अनुवाद कन्नड़, मलयालम, तामिल, गुजराती, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेज़ी, रूसी और जापानी भाषाओं में भी हुआ है.

अव्यय : दो दर्जन से भी अधिक नाटकों का रेडियो नाट्य रूपांतर. कई कहानियों का वाचन. दूरदर्शन पर भी कई कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किये. श्रीमती जया बच्चन द्वारा मालतीजी की

सात कहानियों पर आधारित 'सात फेरे' धारावाहिक (सीरियल) निर्मित. गुलज़ार द्वारा निर्देशित 'किरदार' में भी मालती जी की दो कहानियों का समावेश, इसी प्रकार 'भावना' धारावाहिक में भी तीन कहानियां और 'एक कहानी' में एक कथा को शामिल किया गया. मालती जी की लिखी कुछ कहानियों का रंगमंचीय रूपांतरण कर उन्हें प्रस्तुत किया गया, जिनमें 'मां तुझे सलाम' उल्लेखनीय है.

अलंकरण : रचना पुरस्कार (१९८३ कलकत्ता), मराठी पुस्तक 'पाषाण' के लिए महाराष्ट्र शासन का पुरस्कार (१९८४); म. प्र. के राज्यपाल द्वारा 'अहिंदी भाषी' लेखिका के रूप में सम्मान (१९८५); म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'भवभूति' अलंकरण (१९९८); म. प्र. शासन का 'साहित्य शिखर सम्मान' (२०००); ओजस्विनी सम्मान, उषा मिश्रा अलंकरण, दुष्यंत कुमार साधना सम्मान (२०११), इनके अलावा अक्षर आदित्य सम्मान. कला मंदिर सम्मान, गुरुवंदना सम्मान, महिला वर्ष सम्मान इत्यादि शामिल हैं.

विशेष : श्रीमती मालती जोशी के साहित्य सृजन पर पुणे, कुरुक्षेत्र, कोल्हापुर, हैदराबाद, औरंगाबाद, सागर, इंदौर, भोपाल आदि विश्व विद्यालयों में एम. फ़िल. एवं पीएच. डी. के लिए शोध कार्य संपन्न.

एम. ए. करने के बाद मेरे लिए वर-संशोधन की शुरुआत हुई. राऊरकेला स्थित किसी प्रोजेक्ट पर काम करनेवाला यह इंजीनियर लड़का लिस्ट में सबसे ऊपर था. उन दिनों इंजीनियर्स टके के बीस नहीं मिलते थे और इस नाम के साथ अच्छी खासी गरिमा जुड़ी हुई थी.

श्रीमान जी उन दिनों किसी ट्रेनिंग के लिए विदेश गये हुए थे. बरेली से उनके माता-पिता अपने एक स्थानीय रिश्तेदार के साथ मुझे देख गये थे और अपनी पसंद भी जाहिर कर गये थे. उन्होंने कहा कि बेटा विदेश से जैसे ही लौटेगा फॉर्मली ज्वाइन करने से पहले आपके यहां आयेगा! उसकी स्वीकृति के बाद ही रिश्ते पर आखिरी मुहर लगी थी. पर उन्हें अपने आज्ञाकारी बेटे पर पूरा विश्वास था. वे बोले कि आप तो शादी तयशुदा ही समझिए. बाकी तो सब फॉर्मलिटी है.

उनके इसी विश्वास ने मुझे बल दिया था और मैंने सपने बुनना प्रारंभ कर दिया था. तीन महीनों तक मेरी ही नहीं, घर भर की आंखें कलैंडर पर लगी हुई थीं.

नियत तिथि पर हमें उनके आगमन की सूचना मिली और घर उनके शाही स्वागत की तैयारी में डूब गया. यह

कोई लड़की देखने का मामूली कार्यक्रम नहीं था. भावी दामाद की अगवानी थी.

नियत समय पर वे मामाजी के साथ पधारे. मां और भाभी रसोई में व्यस्त थीं. भैया और पापा बाहर का इंतज़ाम देख रहे थे. मैं अपने श्रृंगार में मसरूफ़ थी और बार बार आईने में अपने को निहार रही थी. हम लोगों को पता ही नहीं था कि बाहर नियति कुछ और खेल रच रही है.

शानदार अभ्यर्थना के साथ उन्हें भीतर लाया गया. आसनस्थ होने के बाद मामाजी ने बताया कि एक बार आने के बावजूद वे थोड़ा भटक गये थे. जिससे रास्ता पूछा संयोग से वह आपकी किरायेदार ही निकली. वही हमें गेट तक छोड़ गयी.

नाश्ते का शाही सरंजाम पूरा होने के बाद ही भाभी मुझे ड्राइंग रूम में लिवा ले गयीं. मैंने देखा, इस अभूतपूर्व स्वागत से उदासीन वह शख्स अनमना-सा बैठा था. मुझे लगा, शायद उन्हें मेरी प्रतीक्षा होगी. मैंने बाहर आने में जानबूझकर देर कर दी थी ताकि प्रतीक्षा की घड़ियों को लंबा खींचा जा सके. पर मेरे आने के बाद उन्होंने बस एक बार नज़र उठाकर मेरी ओर देखा,

फिर मेज़ पर पड़ी पत्रिकाएं पलटते रहे. मामाजी चूँकि एक बार आ चुके थे. थोड़ा परिचय था. इसलिए इधर-उधर की बातें करते रहे. पर श्रीमान जी मुंह में दही जमाये बैठे रहे.

भैया को लगा कि लड़का फ़ॉरेन रिटर्न्ड है. ऐसे बोझिल वातावरण में उसे घुटन महसूस हो रही होगी. उन्होंने कहा कि आप दोनों थोड़ा टैरिस पर बैठ लो. या चाहो तो कार में शहर का एक चक्कर लगा लो. पापा की अनुमति लिये बिना ही भैया ने यह दुस्साहस कर डाला था. पर उनका यह वार भी खाली गया. दूल्हे राजा ने अपना मौन व्रत नहीं तोड़ा तो नहीं ही तोड़ा.

थोड़ी निराशा तो हुई. लगा मेरा सारा श्रृंगार व्यर्थ हो गया. बंदे ने आंख उठा कर देखा भी नहीं. पर मां-पापा बड़े खुश थे. कह रहे थे — संस्कारवान लड़का है. उसे अभी नये ज़माने की हवा नहीं लगी है. हमें तो लगता है मां-बाप ने टेल कर भेजा होगा क्योंकि उन्हें पहले से ही विश्वास था कि उनकी पसंद ही उसकी पसंद होगी.

उसके बाद शुरू हुई लंबी प्रतीक्षा.

लंबी इसलिए कि उन लोगों ने जवाब देने में बहुत देर लगा दी. सच तो यह है कि जवाब उन्होंने अपनी ओर से दिया ही नहीं. उनकी लंबी चुप्पी से परेशान होकर पापा ने ही स्थानीय प्रतिनिधि से मामाजी को फ़ोन लगाया था.

मामाजी ने पहले तो ढेर सारी क्षमायाचना की. फिर प्रिय भानजे को जमकर गालियां दीं. बताया कि नालायक उसी लड़की पर रीझ गया है जो गेट तक छोड़ने आयी थी. उसी के साथ शादी की ज़िद किये हुए है जबकि हम लोग तो यह भी नहीं जानते कि वे लोग कौन हैं, किस जाति के हैं, लड़की के पिता क्या करते हैं....

हम लोग तो जैसे आसमान से गिरे. मधुरा इतनी सुंदर है इस दृष्टि से तो उसे कभी देखा ही नहीं था. इतना भर जानते थे कि पीछे आउट हॉउस में रहनेवाले शर्मा जी की पांच बेटियों में वह तीसरे नंबर की है. दोनों बड़ी बेटियों की शादी हो चुकी है और बकौल मां के उन दोनों की शादी के बाद शर्माजी एकदम झुनझुना (खोखले) हो गये हैं. अपने कॉलेज की फ़्रीस जुटाने के लिए मधुरा को ट्यूशन लेनी पड़ रही है. उस शाम भी वह बच्चों को पढ़ाने ही जा रही थी.

इस वज्रपात के बाद मां ने कहनी अनकहनी सब कह डाली. भैया ने राऊरकेला वाले को चुन-चन कर

गालियां दीं. पर पापा संत आदमी थे. उन्होंने मां को डांटा और कहा कि उन लोगों को क्यों कोसती हो. वे तो उन लोगों के दरवाज़े गये नहीं थे. शर्मा जी की इतनी औकात ही नहीं है. और लड़की भी बेचारी अपने रास्ते जा रही थी. यह तो संयोग ही था कि उनकी नज़रों में चढ़ गयी.

पापा इतना कहकर ही नहीं रुके. उन्होंने शर्माजी को बुलवा भेजा और सारी बात बतायी. शर्माजी बेचारे पापा के चरणों में गिर पड़े और बार-बार माफ़ी मांगने लगे. पापा बोले — “पंडितजी! आप काहे की माफ़ी मांग रहे हैं? आपने किया क्या है? और हम लोगों के किये होता भी क्या है? यह तो सब विधिलिखित हो रहा है. हम लोग नाहक ही बेटियों को कोसते हैं. हर बेटी अपना भाग्य लिखा कर लाती है. आपकी बेटी यही घर-वर लिखा कर लायी थी. वहां तक तो आप कभी नहीं जा पाते. इसलिए ईश्वर ने हमें माध्यम बनाया है. अब रोना-धोना छोड़िए और बेटी के ब्याह की तैयारी कीजिए. ऐसे रिश्ते रोज़-रोज़ नहीं मिलते.

“मैं सुनीला बिटिया का घोर अपराधी हूँ. इस पाप से कैसे उबर पाऊंगा.”

“आपने कोई अपराध नहीं किया है. रही सुनीला की बात तो उसके भाग्य में इससे भी ऊंचा घर-वर होगा. तभी यहां बात नहीं बनी.”

पापा के लाख सौजन्य के बावजूद वे लोग अपराध बोध से मुक्त नहीं हो सके और कुछ ही दिनों में घर छोड़ कर दूसरी जगह चले गये. उस घटना के बाद मधुरा तो हमारे सामने पड़ी ही नहीं. जाते समय उसके माता-पिता विदा लेने आये थे पर वह कहीं नज़र नहीं आयी.

यथा समय वह विवाह भी हो गया. सुना कि वरपक्ष ने ही सारा खर्च उठाया था. निमंत्रण हम लोगों के पास भी आया था. पर किसी के जाने का सवाल ही नहीं था. हां, मां को संदेह ही नहीं पूरा विश्वास था कि पापा ज़रूर वहां गये होंगे और ढेर सारा रुपया देकर आये होंगे.

□

उसके बाद कई-कई दिन तक मेरा हंसना-बोलना, घूमना-फिरना सब बंद हो गया था. मैं घंटों कमरे में बैठी शून्य में ताकती रहती. मां-पापा को मेरी चिंता होने लगी थी. भाभी जब तब मेरे बालों में हाथ फेर कर मुझे निःशब्द सांत्वना देती रहतीं. आखिर एक दिन भैया के सब्र का बांध टूट गया. चीख कर बोले — “तुम इस तरह बिहेव क्यों

कर रही हो? यह कोई तुम्हारी लव मैरेज तो थी नहीं. चीअर अप! ऐसे दर्जन भर लड़के लाकर मैं तुम्हारे सामने खड़ा कर दूंगा. लेकिन इससे पहले अपने आपको संभालो. तुम्हारी शक्ल पर ऐसे बारह बज रहे हैं मानो बड़ा भारी प्रेम भंग हो गया हो.”

प्रेम भंग न सही, पर मेरा बड़ा भारी मान भंग तो हुआ ही था. वह भी एक मामूली हस्ती द्वारा. एक नाचीज़-सी लड़की, मेरे रूप, गुण, विद्या, वैभव सबको धता बताकर मेरे नियोजित वर को हरण कर ले गयी थी और मैं कुछ नहीं कर पायी थी. अपमान की आग से सुलग उठी थी मैं और लग रहा था कि मैं भीतर ही भीतर एक दिन क्षरण हो जाऊंगी.

यह ज्वालामुखी शादी के बाद पति के चंदन स्पर्श से ही शांत हो पाया था.

पापा का वचन सत्य साबित हुआ था. मेरे भाग्य में उससे कई गुना अच्छा घर-वर मिला था. सुंदर, संपन्न, सुशील, सुसंस्कृत, सुशिक्षित. विशेषणों की कतार लगायी जा सकती थी. उसके बाद जिंदगी ने कभी शिकायत का मौक़ा नहीं दिया. संतति, संपत्ति, मान, सम्मान, शोहरत सब कुछ मिल गया था. पति के साथ आधी दुनिया घूम ली थी मैंने. अब भी साल के आधे दिन विदेश में ही कटते हैं. बेटा यूएसए में है. बेटा कनाडा में. मुंबई में चार बेडरूम वाला फ़्लैट है, नासिक के पास अपना फ़ॉर्म हॉउस है.

सुख और किसे कहते हैं?

फिर उस शहर का नाम सुनते ही मन में मरोड़-सी क्यों उठी है? जिस शरख की शक्ल तक मुझे याद नहीं है उसकी याद में इतनी तड़प क्यों है? जिस अध्याय को मैंने जीवन की किताब से फाड़कर फेंक दिया था वह अपने समूचे विद्रूप के साथ मेरे सामने फिर से क्यों खड़ा हो गया है? बुझे हुए शोलों में फिर से यह दहक कैसी?

नहीं, यह किसी की याद नहीं है. यह तो अपमान की आंच है जो कभी बुझी ही नहीं थी. बस राख के नीचे दबी पड़ी थी.

मधुरा, तूने मेरी अस्मिता को ठोकर मारी थी. मैं तुम्हें कभी माफ़ नहीं कर सकती.

❧ 'स्नेहबंध' ५०, दीपक सोसायटी,
चूना भट्टी, कोलार रोड़, भोपाल-४६२०१६
मो. : ९९९३०६८००७

गज़ल

रास्ता बदल डालो

❧ ज़मुरद बेगम 'शाद'

पोंछ कर अशक अपनी आंखों से,

मुस्कुराने की ही आदत डालो ।

सर झुकाना कोई कमाल नहीं,

सर उठाने की भी आदत डालो ॥

टूटकर जिनको प्यार तूने किया,

वे ही नफरत सिखा रहे तुझे ।

कैसी नफरत है क्या मुहब्बत है,

सारे जज्बात अब कुचल डालो ॥

खुद संभलना कोई कमाल नहीं,

दिल न संभले तो कुछ मलाल नहीं ।

कैसे रोकेगे दिल दीवाने को

ख्वाबों में जीने की आदत डालो ॥

ये जहाँ गम का सक सम्ंदर है,

दर्द देना ही इसकी फितरत है ।

हर खुशी बक़शी तुझको मौला ने

शाद रहने की ही आदत डालो ॥

जो हैं अपने वही पराये हैं,

कैसे सम्झोगे सर पे साये हैं ।

जिंदगी की उजाड़ राहों में

धूप सहने की आदत डालो ॥

खुद को क्या शाद रख दिया गिरवी

लोग करते हैं अपनी मनमानी ।

उनकी सत्ता उन्हीं को लौटा दो

अपना तुम रास्ता बदल डालो ॥

❧ ६बी/५३१ आवास विकास कॉलोनी,
लोहियापुरम, फ़र्रुखाबाद-२०९६२५.

सर्वशिक्षा

✍ डॉ. देवेन्द्र सिंह

टेंपो चौक पर रुका. मास्टर रामनारायण मंडल उससे उतरे. झक सफ़ेद धोती-कुर्ता. हाथ में काले रंग का फूला हुआ फ़ोलियो बैग. मास्टर साहब टेंपो वाले को पैसा देकर चले. आगे एक चाय की दुकान थी. “ऐ पंडित,” मास्टर साहब ने दुकान के मुंह पर खड़े हो चाय वाले से कहा, “एक गिलास पानी पिलवाओगे चांपाकल का?”

“कहां गया रे!” चाय वाले ने नौकर को आवाज़ दी, “मास्टर साहब को कल चलाकर पानी पिलाव?” फिर मास्टर साहब से, “बैठिए न मास्टर साहब, खड़े-खड़े पीजिएगा पानी, बेजाय करेगा.”

“अरे हमको देर हो रही है स्कूल में.”

“वहां जाकर भी तो बैठबे न कीजिएगा! सुस्ता लीजिए दो मिनट.”

मास्टर साहब मुंह से झल्लाहट तथा पछतावे का मिश्रित स्वर निकालते भीतर घुसे और दीवार से सटी एक बेंच पर बैठ गये. दुकान छोटी-सी थी. तीन दीवारों से लगी पतली-पतली बेंचें. एक तरफ़ कई ईंटों पर धरी चौकी जिस पर चायवाला बैठता था. चौकी के आगे, बाहर की तरफ़ भट्टी थी.

लड़के ने पानी पिलाया. पानी पीकर मास्टर साहब उठने लगे.

“चाय पी लीजिए मास्टर साहब!” चाय छानते हुए चाय वाला बोला.

“तुम हमको देर कराओगे और कुछ नहीं!” मास्टर साहब ने प्रेमिल गुस्से से कहा और वापस बैठ गये.

चायवाले ने कांच की चार छोटी-छोटी गिलसियों में चाय छानी. एक मास्टर साहब को थमायी. दो दूसरी बेंच पर गप्प करते ग्राहकों को. चौथी उस युवा को दी जो सैलानी की तरह पीठ पर पिड्डू लादे आया था और दुकानदार से कुछ पूछताछ करता चाय के इंतज़ार में बैठा

था. चाय बांटकर वह फिर चौकी पर बैठ गया.

“आपको क्या लगता है मास्टर साहब,” चायवाले ने पूछा, “इस बार क्या मोदी का चांस है प्रधानमंत्री बनने का?”

“बन भी गया तो तुमको क्या मिल जायेगा?”

“नहीं, हमको क्या मिलेगा!”

“तुम तो यही चाय ही न बेचोगे या मोदी तुमको रेस्टोरेंट खोलवा देगा?”

“हम तो चाय ही बेचेंगे मास्टर साहब!”

“वही सोचो! तुम्हारे बाप-दादा पंडित थे. सबसे पैर पुजाते थे. वेद पढ़ते थे. पूजा-पाठ करते थे और तुम जूटा गिलास धोते हो, धोते हो न जी?”

“धोते ही हैं!”

“क्यों?”

पंडित के पास उस प्रश्न का जवाब न था. वह मास्टर साहब को देखता चुप बैठा रहा.

“आप क्या शिक्षक हैं?” तभी बगल में पिड्डू टिकाकर तीसरी बेंच पर बैठे युवा ने मास्टर साहब से पूछ दिया.

मास्टर साहब का तार टूट गया. उन्होंने युवक को छेदती आंखों से देखा.

“हां हैं तो!” मास्टर साहब बोले.

“आपका विद्यालय कितने बजे लगता है?” युवक ने दूसरा प्रश्न दागा.

“क्यों, तुम स्कूल इंस्पेक्टर हो जो हिसाब-किताब ले रहे हो?”

“नहीं सर, मैं तो खाली पूछ रहा हूं.” युवक के चेहरे पर मासूमियत थी और आवाज़ में विनय, “मैं बाहर से आया हूं. हम लोग सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का सर्वेक्षण कर रहे हैं.”

“किसके लिए कर रहे हैं आप लोग सर्वेक्षण?” मास्टर साहब ने नरम पड़ते हुए पूछा.

“हम लोगों की एक संस्था है.”



प्रकाशन :

‘तिरहुतिया,’ ‘भोज,’ ‘लोककथा की त्रैपदी,’ ‘काठ की टांगें’ (कहानी-संग्रह), ‘आमुख कथा’ (उपन्यास), ‘अत्ता-पत्ता’ (उपन्यास/शिल्पायन से प्रकाशनाधीन), ‘छाया युद्ध’ (पूर्णकालिक नाटक).

संपादन :

‘कविता भागलपुर’ के चार साझा संकलन, हिंदी तथा अंगिका की पत्रिकाएं.

सम्मान :

बनाएसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान.

संप्रति :

स्वतंत्र लेखन.

“एन. जी. ओ.?”

“जी!”

“मास्टर साहब!” तभी चाय वाले ने हस्तक्षेप-सा करके कहा, “यह लड़का अभी हमसे पूछ रहा था कि यहां आसपास में कोई प्राथमिक शाला है?”

“क्या नाम है तुम्हारा?” मास्टर साहब ने लड़के से पूछा.

“संदीप!”

“ठीक है, चलो हमारे साथ!” कहकर मास्टर साहब खड़े हो गये. जब से नोट निकालकर चाय वाले की ओर बढ़ाते बोले, “इसका भी काट लो?” उनका संकेत संदीप की ओर था.

“मैं पैसे दे रहा हूं न!” संदीप हड़बड़ाकर बोला.

“कोई बात नहीं.”

दोनों विद्यालय की दिशा में चले. विद्यालय चौक से सटा ही था. कुछ मिनट चलने के बाद ही वे एक विशाल अहाते के अंदर घुसे. बड़ा-सा मैदान. मैदान के किनारे-किनारे हरे-भरे पेड़ों की कतार. एक तरफ आलीशान भवन.

“यह प्राथमिक शाला है?” संदीप ने हैरानी से पूछा.

“नहीं, यह तो हायर सेकेंडरी स्कूल है. प्राथमिक विद्यालय इसके पीछे है.”

वे पूरा मैदान और भवन पारकर पीछे की ओर आये. वहां कोने में बड़ी ब्रैकेट (कोष्ठक) के आकार का एक छोटा-सा पक्का मकान था. उसमें पांच वर्ग और कार्यालय कक्ष था. मकान के आगे दस-बारह बच्चे और उनके बीच नाक पर पल्लू दबाये एक ‘देवीजी’ खड़ी थीं. उन सबकी निगाहें उधर ही लगी थीं जिधर से वे दोनों आ रहे थे. मास्टर साहब को आभास हुआ कि फिर कुछ घटा है और छात्र तथा देवीजी उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे हैं.

उनके निकट पहुंचते ही बच्चे मास्टर साहब की ओर लपके और धांय-धांय उनके पैर छूने लगे.

“प्रणाम सर!” देवीजी ने भी अभिवादन किया.

“आप लोग बाहर क्यों खड़े हैं?” मास्टर साहब ने देवीजी से मुखातिब हो पूछा.

“देखिए न जाकर!” देवीजी इतना ही बोलकर रह गयीं.

“क्या बात है रे?” मास्टर साहब ने बच्चों की ओर मुंह करके पूछा.

“पंचम वर्ग में किसी ने पखाना कर दिया है सर!” बच्चे समवेत स्वर में बोले.

“ओ!” मास्टर साहब के चेहरे पर तेजी से कई भाव आये गये, फिर वे संदीप की ओर मुड़े, “तुम्हारे पास कैमरा भी है?”

“जी सर है!”

“तो निकालो उसको और लो तस्वीर. तुम्हारा सर्वेक्षण शुरू हो गया. आओ!” कहकर वे आगे बढ़े.

पीछे-पीछे संदीप चला. बच्चे मास्टर साहब से भी आगे भागे और पंचम वर्ग के मुहाने पर पहुंच पलटकर उन लोगों को देखने लगे. देवीजी चार-छः डग पीछे ही रहीं. उन्होंने नाक पर पल्लू और कसकर दबा लिया था.

मास्टर साहब ने देखा. संदीप ने भी देखा. ब्लैकबोर्ड और डेस्क-बेंच के बीचोबीच मानव मल का बदबू मारता बड़ा-सा लोंदा (चोत)! मास्टर साहब दो पल खड़े रहे, फिर पलटे. मगर बच्चे डटे रहे. संदीप ने पिट्टू से कैमरा निकाला और क्लिक किया. फिर वह भी पलटा. पीछे-पीछे बच्चे.

“देख लिये न!” मास्टर साहब ने संदीप से कहा, उनके चेहरे पर विद्रूप था, “यही है राज्य की प्राथमिक पाठशाला का सरजमीनी सच.”

बीच बरामदे पर आकर वे खड़े हो गये. उनकी आंखों में गुस्सा भरा था. चेहरा तमतमाया हुआ. वे कुछ पल खड़े रहे, फिर सहज होने की चेष्टा करते देवीजी की ओर मुड़े.

“पहले तो इसको साफ़ करना पड़ेगा न, कैसे होगा?”

“मेहतर ही न करेगा, और कैसे होगा!” देवीजी बोलीं.

“मेहतर अभी कहां मिलेगा? सुबह भले बिल-बिल करता चलता है, मगर अब तो...!”

वे कुछ देर ‘क्या किया जाय’ वाली मुद्रा में रहे, फिर जैसे उपाय सूझ गया हो, झटके से बोले, “अरे!” वे अब छात्रों से मुखातिब थे, “तुम लोगों के घर में राख तो होगी. जाओ तो, लाओ प्लास्टिक की थैली में भरकर. घूरा-ऊरा पर से भी उठा लेना, जाओ जल्दी?”

कई बच्चे दौड़ पड़े. मास्टर साहब देवीजी की ओर मुड़कर बोले, “गांव-घर में देखते हैं, कभी-कभी कुत्ता-उत्ता आंगन में पखाना कर देता है तो उस पर पहले राख डाल देते हैं. बाद में नहाने से पहले कोई औरत उसको उठाकर फेंक आती है.”

देवीजी मौन ही रहीं, मगर उनका चेहरा बोल रहा था कि अगर मास्टर साहब का इशारा उनकी ओर हो कि वे ‘उठाकर फेंक आयेगी’ तो वे जान लें, उनसे यह काम न होने का. जायें, अपना खोजें जाकर मेहतर या जो करें...

बच्चे दो-तीन पन्नियों में राख भरकर ले आये.

“जाओ, उसके ऊपर सब डाल दो,” मास्टर साहब ने बच्चों को आदेश दिया, “पूरा झांप देना!”

बच्चे फौरन मल पर राख डाल आये.

“अब जाओ तुम लोग अपने-अपने वर्ग में जाकर बैठो?” मास्टर साहब ने बच्चों से कहा, “वर्ग पांच का भी है कोई रे?... “दो हैं!” ...तुम दोनों भी वर्ग चार में ही बैठ जाओ?” फिर देवीजी से, “जाइए, सबको कुछ-कुछ काम दे दीजिए!”

बच्चे वर्गों में चले गये. देवीजी कार्यालय कक्ष की ओर मुड़ीं.

“आओ, अब तुमको विद्यालय की दशा दिखाते

हैं.” मास्टर साहब ने संदीप से कहा जो वहीं खड़ा था.

“पहले वर्गों का हाल देखो!” वे एक-एक वर्ग के सामने खड़े हो दिखाने लगे, “देखो, एक भी खिड़की साबुत नहीं है. सबके पल्ले गायब हैं. यहां तक कि छड़ भी बहुत ले गये उखाड़-उखाड़कर. और ये दरवाजे देखो वर्गों के. बार-बार इनके ताले तोड़ देते हैं. पल्ले उखाड़ देते हैं. वर्ग पांच के तो किवाड़ भी तोड़कर ले गये...”

“कौन करता है यह सब?” संदीप ने बीच में ही पूछ दिया.

“समाज करता है!” मास्टर साहब के स्वर में फिर वही विद्रूप था.

“समाज करता है?”

“तब कौन करता है?...देखो, आस-पास के मोहल्लों के लुहेड़े यहां बैठकर गांजा-दारू पीते हैं. और भी जो मन होता है करते हैं. वर्गों में कभी बीयर की खाली बोतलें मिलती हैं, कभी दारू की... कंडोम मिलता है. कभी-कभी तो छोटे बच्चे उसको फुकना समझकर उठा लेते हैं और फूकने लगते हैं... शाम को लड़के यहां क्रिकेट खेलते हैं...”

“विद्यालय में?”

“हां, मैदान और विद्यालय दोनों में. वर्ग के दरवाजों को ही विकेट बना लेते हैं. तुम देखो न, चॉक से विकेट बना हुआ है. फिर इसी पर बॉलिंग होती है... वे लड़के-बच्चे कौन हैं? इसी समाज के न!...और यह बरामदा देखो जहां तुम खड़े हो. इसके ऊपर चदरे पड़े थे. सारे चदरे वगैरह गायब हो गये. अब ये लोहे के पिलर भर बचे हैं और इनके ऊपर पड़ी लकड़ी की बीम. इसका भी हाल देख लो. हिला-हिलाकर ऐसा हाल कर दिया है. धीरे-धीरे ये भी गायब हो जायेंगे... उधर विद्यालय का पखाना बना है. उसमें रोड़ा-ईटा भर दिया है...”

“पर ऐसा करते क्यों हैं? उनको विद्यालय से क्या दुश्मनी है?”

“यही तो असली सवाल है... हमारे युवा, हमारे बच्चे, हमारी अगली पीढ़ियां विध्वंसक हो रही हैं. उनको तोड़-फोड़ में, विध्वंस में मजा आता है. हिंसा, मार-धाड़ वाले दृश्य उनको आनंद देते हैं. उनकी यह मानसिकता क्यों और कैसे बनी, यह जाकर पूछो उनसे जो कर्णधार हैं. मेरे छोटे दिमाग में इसका जवाब नहीं है...”

“आपने इस सब की शिकायत नहीं की?”

“सब किया. विभाग, पुलिस, विधायक-पार्षद सबसे

कहा. पत्रकारों ने फ़ोटो के साथ सब हाल छापा. मोहल्लों में घूम-घूमकर अभिभावकों से कहा और अंत में थक-हारकर बैठ गये... चलो, अब कार्यालय में बैठकर बात करते हैं.” कहकर मास्टर साहब कार्यालय की ओर बढ़ गये.

“बैठो और अब पूछो तुमको और क्या-क्या पूछना है?” मास्टर साहब एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले.

संदीप ने नोटबुक और कलम निकाली.

“आपके विद्यालय में कितने छात्र हैं?”

“अभी तो कुल बहतर ही छात्र हैं, वह भी रज़िस्टर पर. मगर आते इतने ही हैं. ये ऐसे बच्चे हैं जो पढ़ना चाहते हैं... हां, जब मध्याह्न भोजन का समय होगा, तब ढेर सारे आ जायेंगे और खाकर फिर घर चले जायेंगे.”

“उनको रोकते नहीं हैं?”

“मार खाना है हमको! पढ़ते नहीं हो अखबारों में शिक्षकों को पीटे जाने की खबर, रोज़ तो छपती है. आज इसका पैसा बांटने में तो कल उसका. अरे अब इन विद्यालयों में कोई अनुशासन रहा है क्या! हम लोग तो बस दिन खेपते हैं. थोड़ा दिन और खेपना है. अब तो एक ही कामना है कि शुभ-शुभ करके निकल जायें इज़्जत बचाकर...”

“पहले क्या यहां अधिक बच्चे थे?”

“बहुत अधिक. तीन सौ से भी ऊपर. तब अध्यापक भी आठ थे. उस समय की बात क्या पूछते हो? यहां बच्चों का नाम लिखाने के लिए अभिभावक पैरवी करवाते थे. देखते-देखते सब बर्बाद हो गया.”

“ऐसा क्यों हुआ?”

“ऐसा इसलिए हुआ कि विद्या को बाज़ार में बेच दिया गया!” मास्टर साहब एकाएक तैश में आ गये, “शिक्षा की दुकानदारी होने लगी. गली-गली में दुकानें खुल गयीं. सबने अपनी दुकानों के आगे ‘कंवेन्ट’, ‘पब्लिक’ और ‘इंगलिश मीडियम’ का बोर्ड लगा लिया. अब लोग पेट काटकर भी बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ाते हैं. जो एकदम असमर्थ हैं, उनके बच्चे इन सरकारी विद्यालयों में आते हैं. वे भी पढ़ने कम, खाने के लोभ में ज़्यादा...”

“अभी यहां कितने अध्यापक हैं?”

“यही दो. जबकि स्वीकृत पद आठ हैं.”

“आप प्रधानाचार्य हैं?”

“हां, और हम दोनों भी एक साल के अंदर सेवानिवृत्त हो जायेंगे.”

“उसके बाद क्या होगा?”

“भगवान जाने!”

“आप लोगों को वेतन कौन-सा मिलता है?”

“छठे वेतनमान वाला.”

“वेतन तो ठीक है?”

“बहुत ठीक है. मगर हमारा उपयोग नहीं होता है.”

“उपयोग नहीं होता है?”

“पढ़ाने के लिए तो नहीं होता है जिसके लिए हमारी बहाली हुई है और वेतन मिलता है. हां, आदमी-घर-पशु आदि गिनने के लिए, चुनाव कराने के लिए होता है.”

“आपके यहां मध्याह्न भोजन की क्या व्यवस्था है?”

“अभी व्यवस्था यह है कि ढाई बजे के करीब बना-बनाया भोजन ही आ जाता है. एक एजेंसी को ठेका दे दिया गया है.”

संदीप ने घड़ी देखी, बोला, “अभी तो उसमें काफ़ी देर है.”

“मध्याह्न भोजन भी देखना है?”

“हां, एक कॉलम उसका भी है.”

“और क्या-क्या है?”

“बच्चों से भी कुछ बातें करनी हैं.”

“तो जाओ, वहां देवीजी हैं ही, करो बातचीत. मैं तब तक किसी मेहतर को देखता हूं. कक्षा की सफ़ाई तो करवानी पड़ेगी न.”

“कहां देखेंगे मेहतर?”

“देखते हैं, कहीं घूमते दिख गया तो...नहीं तो मेहतर टोली तक जाना पड़ेगा...” कहते हुए मास्टर साहब उठे और निकल गये.

संदीप कक्षा की ओर चल पड़ा.

कोई घंटा भर बाद मास्टर साहब लौटे. उनके साथ एक लड़का था. लड़के के हाथ में बहुत लंबी बेंट वाली पतली कुदाली थी. उसने वर्ग के अंदर घुसकर राख ढंका मल देखा. मास्टर साहब मुंह पर ही ठमक गये. लड़का कुछ देर राख को देखता रहा, फिर पलटा.

“पचास टका लगेगा मास्टर साहब!” लड़का बोला.

“इसको उठाकर फेंकने का पचास टका लगे?”

मास्टर साहब बिगड़ गये, “तुम्हारा दिमाग-उमाग खराब है क्या जी! इतना-सा साफ़ करने में क्या लगेगा तुमको?...”

“नहीं लगेगा तो कर काहे नहीं लिये अपने से?”

लड़के ने भी उसी ताव में पलट सवाल किया, “या ई देवीजी कर लेतीं. घर में तो अपने बच्चों का पखाना साफ़ करती ही होंगी.” उसने कक्षा से निकल आयी देवीजी को दिखाकर कहा और रास्ता पकड़ लिया.

“अरे सुनो न!” मास्टर साहब गरजे.

लड़का वापस घूमकर खड़ा हो गया.

“चलो बीस टका दे देंगे, करो!”

“नहीं होगा सर!”

“तब अब तुम्हीं बोलो कि आखिर कितना लगे?”

“हम तो बोल ही दिये!”

“ओ!” मास्टर साहब का पुरुषार्थ फनफना उठा, “तुमको लगता है हम यह काम नहीं कर सकेंगे यही न! इसीलिए न तुम इतना भाव बढ़ा रहे हो?...जाओ तुम, भागो, हम अपने कर लेंगे साफ़.” कहकर वे कुर्ते का बटन खोलने लगे, ‘अरे!’ उन्होंने छात्रों को आवाज़ दी, “देखो तो, दो ठो खपटा लाओ तो खोजकर?...साला! हम कि कोई ब्राह्मण-पंडित हैं रे कि छुता जायेंगे!...” वे बड़बड़ाते हुए कुर्ता खोलने लगे.

“चालीस टका दीजिएगा, बोलिए?” लड़के ने पूछा.

“तुमको अब बीस टका से एक छदाम बेसी नहीं देंगे. करना है करो, नहीं तो भागो!”

इस बीच बच्चे खपटे खोज लाये थे. मास्टर साहब ने भी कुर्ता उतारकर कुर्सी की पीठ पर डाल दिया था और अब धोती को उठाकर कमर में खोस रहे थे.

“लाइए!” लड़का लौटकर आया, “ठीक है, आपका यही मन है कि गरीबमार ही करेंगे तो कीजिए! हम साफ़ कर देते हैं, आपका मन होगा तो दीजिएगा, नहीं होगा तो...”

“अब भाषण बंद करो और चुपचाप अपना काम करके जाओ?” मास्टर साहब ने उसको डपटा, “तुम लोगों की यही आदत खराब है. हल्ला-गुल्ला करके चाहते हो कितना झाड़ लें...”

“काम भी तो वैसा ही न करते हैं सर!”

उसने बच्चों से खपटे लिये. आसपास से खोजकर एक पॉलिथिन बैग लाया और मल को उसमें भरकर नाले में फेंकने चला गया.

“अरे!” मास्टर साहब फिर बच्चों की ओर मुंह कर गरजे, “दो ठो छौरा आओ तो, बाल्टी ले लो और बड़के

स्कूल से पानी भर लाओ भागकर.”

“विद्यालय में पानी की व्यवस्था नहीं है?” संदीप ने, जो वहीं खड़ा था, पूछ दिया.

“अरे क्या बतावें!” मास्टर साहब कुर्सी पर से कुर्ता उठाकर पहनते हुए बोले, “एक चांपाकल मांग-चांगकर गड़बाये थे, मगर उसका भी हथड़ा-वथड़ा खोलकर ले भागता है. लगाते-लगाते थक गये तो छोड़ दिया.”

बच्चे पानी भर लाये. वे मग से मल-स्थल पर जल डालते गये और लड़के ने झाड़ू से सब साफ़ कर दिया.

“तुम्हारा सब कॉलम भर गया?” मास्टर साहब ने संदीप से पूछा.

“एक कॉलम बचा है, मध्याह्न भोजन वाला.”

“वह भी भर जायेगा, थोड़ा-सा और इंतज़ार करो.”

“अच्छा सर, इस रिपोर्ट में, आपसे जो बातचीत हुई, उसमें आपका नाम देंगे?”

“अब रिटायरमेंट के समय सस्पेंड करवाने का मन है क्या?” मास्टर साहब ने हंसकर पूछा.

“नहीं सर, आप मना करेंगे तो आपका नाम न देंगे!”

“वैसे दे भी दोगे तो कोई बात नहीं. हम इस सब से नहीं डरते हैं. डरता है वह जो ग़लत करता है. हमने तो जो सच है वही कहा है. फिर सांच में आंच क्या! और सबसे बढ़कर तो जब तक तुम्हारा यह सर्वेक्षण पूरा होगा और रिपोर्ट बनकर प्रकाश में आयेगी, हम ‘बोलो राम छुर’ बोल चुके होंगे!” कहकर वे हंस पड़े.

भोजन की गाड़ी आयी. हिंडैलियम के ड्रम में भात, देग में दाल. देवीजी तथा सब बच्चे कक्षा से निकल आये. बच्चों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी. बरामदे में बच्चों की पंगत बैठी. बाद में आये बच्चे थाली या कटोरा लेकर आये थे. सुबह वाले बच्चों को जो बस्ता लेकर आये थे, पत्तलें बांटी गयीं. संदीप ने मन-ही-मन बच्चों की गिनती ली. वे कुल बासठ थे.

देवीजी तथा कुछ बड़े बच्चों ने मिलकर भोजन परोसा. मास्टर साहब कुर्सी खींचकर ऑफिस के मुंह पर आ बैठे. संदीप उनके पास ही खड़ा था.

“आप लोग बच्चों को खिलाने से पहले भोजन चखते नहीं हैं?” संदीप ने मास्टर साहब से पूछा.

“नहीं!” मास्टर साहब ने संक्षिप्त, मगर रुक्ष-सा उत्तर दिया. उनकी मुद्रा देखकर लग रहा था, उस प्रश्न ने उनको चिड़चिड़ा कर दिया था.

“पर ऐसा नियम तो है?”

“नियम तो बहुत सारे हैं, सबका पालन होता है क्या?” मास्टर साहब ने प्रश्न के उत्तर में प्रश्न ही दाग दिया, फिर हंसकर पूछा, “तुम चखना चाहते हो क्या?”

“हां! भोजन की गुणवत्ता का तभी तो पता चलेगा. उसके बिना हमारा सर्वेक्षण भी पूरा न होगा.”

“देवीजी!” मास्टर साहब ने हांक दी, “एक प्लेट में इसको भी थोड़ा-सा दीजिए तो!”

देवीजी कार्यालय में आयीं. आलमारी से एक प्लेट निकाली. उसमें थोड़ा-सा भात, उसके ऊपर दाल डालकर संदीप को पकड़ा दिया.

“मध्याह्न भोजन में सब्जी का प्रोविजन नहीं है?” संदीप ने पूछा.

“सब है!” मास्टर साहब का चेहरा क्षोभ, घृणा और दर्द से विकृत हो गया, “मगर यहां इन भूखे बच्चों से भी अधिक भूखे लोग हैं ऊपर से लेकर नीचे तक. उनसे बचेगा तभी तो इनको मिलेगा!...जो तुम्हारे प्लेट में है क्या भात और दाल उसी को कहते हैं?...हम तो कहते हैं तुम भी इसको मत खाओ.”

संदीप ने देखा, पंगत में बैठे बच्चे हप-हप खा रहे थे. वह प्लेट में पड़े गंदे चावल और पानी दाल को कुछ पल घूरता रहा.

“जो सामग्री ये बच्चे खा रहे हैं सर,” सहसा वह वयोचित आदर्श के आवेग में बोल पड़ा, “उसको हमें भी खाकर देखना चाहिए!”

“खाओ!”

संदीप ने एक कौर मुंह में दिया. मुंह को चलाया. एक अजीब तरह का, सड़ांध जैसा स्वाद भीतर भर गया. उसको लगा, यदि वह कौर निगल गया तो पेट उसको उगल देगा. मास्टर साहब कनखी से उसको देख रहे थे. वह तेजी से बाहर की ओर लपका. किनारे जाकर मुंह का कौर फेंका. प्लेट में पड़ी सामग्री भी वहीं डाल दी. बरामदे पर आकर बाल्टी से मग में पानी लिया. कुल्ला किया, प्लेट धोयी और वापस आ गया.

“एक कौर भी नहीं निगल सके न?” मास्टर साहब ने पूछा.

“बच्चे कैसे खा रहे हैं!” संदीप का स्वर थका-सा था.

“ये बच्चे भूखे हैं संदीप. इनको घर में सत्तू-गुंडा मिलता है खाने को, वह भी भर पेट नहीं. भात-दाल इनके

गीत

मैं अपराजिता

✍ माधवी कपूर

मिट्टी में, पानी में, सब में अलंकृता ।

कण-कण संजोया है,

दुखते हुए मन में ।

प्रीति-कण बोया है,

फिर भी हर क्षण में ।

धरती-सा धीरज इसे,

तोड़ नहीं पाओगे ।

मोह कहो - माया कहो,

छोड़ नहीं पाओगे ।

प्रकृति ने हर पल में लिख दिया मेरा पता ।

फूलों से सुरभित,

कांटों से घेरी हुई ।

आदि से अंत तक,

मेरी ही फेरी हुई ।

सारा संसार मेरी,

पगध्वनि पर नाचा है ।

गीता रामायण सबने,

मुझे ही तो बांधा है ।

सूरज की किरन में, चांदनी सी सुष्मिता ।

✍ के ६०४, रेल विहार,

सेक्टर-४, खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०.

लिए सपना है. इसीलिए जैसा भी मिलता है खा लेते हैं.”

“पर यह खाना खाकर ये बीमार पड़ जायेंगे!”

“बीमार ही नहीं पड़ते, मर भी जाते हैं. मगर इनके मरने-जीने की परवाह किसको है?”

संदीप बकर-बकर मास्टर साहब का मुंह देख रहा था.

✍ देवगिरि, आदमपुर घाट मोड़,

भागलपुर-८१२००१.

मो.: ८०८४४३२७०१.

कुसुममाला

✍ डॉ. निरुपमा राय

“दीदी ! मां नहीं रहीं... कल रात दो बजे...”
कहते हुए मीना का स्वर भारी हो उठा था। कैसे...? कब...? क्यों? जैसे प्रश्न बेमानी थे। मेरी दृष्टि में तो वो उसी दिन से मृत्यु शैय्या पर थीं, जिस दिन ‘शिवजी’ ने घर छोड़ा था। ज्येष्ठ पुत्र का इस तरह अचानक घर त्याग कर चल देना... और पत्र में लिखे चंद शब्द... “जा रहा हूँ... क्यों? तुम्हें पता है... कहां? यह मैं भी नहीं जानता... शायद अब कभी ना लौटूँ... प्रतीक्षा मत करना...” और एक मां के जीवन में विराट शून्य का उत्पन्न हो जाना, साक्षी रही हूँ इस सत्य की। आज तो बच्ची बुआ का शरीर नष्ट हुआ था... आत्मा तो कब की मर चुकी थी।

बुआ मेरे पिता से बारह वर्ष छोटी थीं। जब से मैंने होश संभाला उन्हें कभी खुश नहीं देखा। एक अनकही पीड़ा... एक वेदना उनके चेहरे पर स्पष्ट प्रतिभासित होती थी। बहुत कम बोलती थीं बुआ। मिथिला में एक कहावत है, ‘माय-धिया दू जात... पीसी... भतीजी एक जात,’ यानी बुआ और भतीजी का रिश्ता मां-बेटी के रिश्ते से भी बढ़कर होता है। पर मेरे साथ ऐसा नहीं था। बुआ ने कभी हंसकर दो बोल नहीं बोले। ... कभी कलेजे में भींचकर प्यार नहीं किया। उनके आस-पास जैसे बर्फ की चट्टान जमी रहती थी। प्रेम... अनुभूति... उल्लास... करुणा... संवेदना... कोई भी ऊष्मा उस चट्टान को पिघलाने में असमर्थ थी।

बालपन में तो सब कुछ ठीक लगा। पर जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ती गयी बुआ मेरे लिए एक अबूझ पहेली बनती गयीं। दस वर्ष की थी मैं, जब बुआ ब्याहकर ससुराल चली गयीं। मुझे आज भी याद है जब महीने भर बाद वो ससुराल से लौटी थीं। ... सुंदर बनारसी साड़ी और गहनों से सजी बुआ के चेहरे पर वही चिरपरिचित सत्राटा था... उमंग की किरणें किसी कोने से नहीं झलक रही थीं।

और मैंने मां से कहे गये फूफाजी के शब्द भी सुने थे। “भाभी! किस पत्थर से बांध दिया मुझे... इस पर तो किसी भावना का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता... सब कुछ कृत्रिम सा लगता है... बनावटी... अनुभूति विहीन...” उस समय इन भारी भरकम शब्दों को ठीक से समझ नहीं पायी थी। ... पर मेरे प्रश्नों की छड़ी ने मां और दादी के अंतर्मन में गहरे तक जमी एक ‘कथा’ को धीरे-धीरे कुरेदना शुरू कर दिया था और टुकड़े-टुकड़े होकर वो झरने भी लगी थी... वर्षों झरती रही थी... समय अपनी गति से आगे बढ़ता जा रहा था। बुआ की मृत्यु के समाचार से आहत मेरा मन अनायास उस पुरातन कथा की किरचें समेटने लगा है... कई बिंब उभर रहे हैं... कई खंडों में सुनी गयी कथा को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करती मैं अनायास बहुत पीछे चली गयी हूँ. ... वहां, जहां आंगन में रखे अपने पति के शव पर विलाप करती एक स्त्री मर्मांतक पीड़ा से दोहरी हुई एक ही बात रट रही है... पूरे समाज के सामने कातर स्वर में गिड़गिड़ा रही है — ‘सब ध्यान से सुन लीजिए... कल कोई मुझ पर लांक्षन न लगाये. ... मैं छह महीने की गर्भवती हूँ न जाने किस पाप घड़ी में यह बच्चा गर्भ में आया कि बाप को ही लील गया...’

मात्र पैंतीस वर्ष की उम्र में वैधव्य झेलने पर विवश वो स्त्री, सीता नियति के इस कशाघात पर हतप्रभ थी। अपनी इस अनचाही संतान से मुक्ति पाने के लिए उसने हर संभव उपाय आजमाया... खूब पपीता खाया... आक-धतूरे के बीज तक पीसकर पी गयीं... पेट पर मुक्के मार-मार कर हाथ दुःख गये... पर, ‘जाको राखे साईयां मार सके न कोय’ यह उक्ति चरितार्थ होती गयी और आठवें महीने में ही एक कन्या दुःख झेलने इस धरती पर आ गयी।

“हे ईश्वर! ये लड़की तो एकदम स्वस्थ है... सांस ले रही है...” निपट देहाती गांव की एकमात्र नर्स कम्मो दाई ने दांतों तले अंगुली दबा ली थी।



**कथाबिंब की हितैषी एवं
नियमित लेखिका.**

“अठमसुवा बच्चा कहीं बच छै...?” सीता की जेठानी ननदें भी हतप्रभ रह गयी थीं. पर... आठवें महीने में जन्म लेकर भी वह बच गयी थी... नियति ने उसके खाते में कई दर्द जो लिख डाले थे. नन्हीं बच्ची भूख से कलपती रहती पर सीता का मन ही नहीं करता उसे दूध-पिलाने का... उसका एक ही उत्तर होता... “पेट में अएते ही बाप के खाय गेलैय.” बच्ची भूख से रो-रोकर हलकान हो जाती तो घर में काम करनेवाली नरेशबा की माई गाय का दूध कटोरे चम्मच से पिलाती मालकिन को तसल्ली देती रहती, “की करबै बहुरिया ! मालिक गेलखिन अपने करम सं... ई धिया अएलै अपन भाग सं... बच्चा के आहा नय छीनी... लियो अपन दूध पिया दियो...” पर छाती से बच्ची को लगाते ही सीता को लगता जैसे विषदंत लग गये हों. बच्ची चार महीने की हो चली थी... गोल-गोल आंखें मटकाती... होंठ टेढ़ा करती मुस्काती, तो मां का हृदय ज़रूर डोल उठता था. धीरे-धीरे सीता बच्ची के प्रति नरम होने लगी थी. उसके तीनों बेटे भी बहन को खूब दुलारते... गांव से पांच कोस दूर स्कूल में जाकर पढ़ रहे बेटों को ही अपना भविष्य मान कर सीता हृदय की पीड़ा को पीने लगी थी. “भौजी! एकर नाम की राखबे?” नन्हीं बच्ची को तेल लगाती छोटी ननद ने एक दिन पूछा तो सीता सोच में पड़ गयी, बोली... “विलासपुर वाली काकी से पूछि कै नाम धरबै... सुंदर नाम... भगवती के नाम पर...”

यहां बच्ची के नामकरण की बात सोची जा रही थी और इधर नियति अपनी वक्र चाल चलने जा रही थी. वो एक सामान्य सी दोपहरी थी... जब स्कूल से लौटे तीनों लड़के अचानक भीषण ज्वर से तपते-कांपते बिस्तर पर जा

गिरे थे... नरेशबा माई भागकर नर्स को बुला लायी थी... नर्स बुखार का लाल गाढ़ा सिरप पिलाकर ताकीद कर गयी थी... “कै-दस्त होगा तो खबर भेजवाईयेगा... बीसियों गांव में हैजा फैल गया है...”

हे भगवती ! रक्षा... दया... कृपा...! दया श्रीराम! हे पुरानी कुईयां वाले पीर. हे ब्रह्मबाबा! हे भोलेनाथ! जय हो राधा-कृष्ण... पूरी रात देवता-पितरों को गुहारते बीती थी... रो-रोकर सीता का बुरा हाल था और आंगन के एक कोने में पड़ी चटाई पर लेटी नन्हीं बच्ची गला फाड़कर चीख रही थी. शायद आसन्न विकट काल का उसे आभास हो गया था.

दो रातें बीतते-बीतते छोटे लड़के का बुखार तो उतर गया पर दोनों बड़े लड़के कै-दस्त से बेहाल होकर तीसरी रात हैजे की भेंट चढ़ गये. माय गे! सीता ने छाती पीट-पीटकर लाल कर ली थी. दो जवान बच्चों की असमय मृत्यु पर पूरा गांव सन्न था... मूक-बधिर से खड़े थे लोग... समझाने के लिए शब्द थे ही कहां...? अचानक सीता उन्माद की अवस्था में तेजी से भीतर दौड़ी और पांच महीने की उस कन्या को उठाकर धरती पर पटक दिया.

“ई की करै छिये बहुरिया...?” सब ने रोकना चाहा पर क्षण मात्र में धरती पर फेंकी गयी बच्ची का रूदन और सीता की चीख एक साथ गूंज उठी थी, “विपैत छै... भारी विपैत छै ई विषकन्या... आय या ते ई रहतै या हंम...!” (विपत्ति हैं... भारी विपत्ति है, यह लड़की. आज ये रहेगी या मैं.) लोगों ने किसी तरह सीता को संभाला. और नियति की माया! जोर से भूमि पर पटकने पर भी बच्ची को कुछ नहीं हुआ था. कुछ ही देर में कटोरे-चम्मच से, दूध पीती वो धीरे-धीरे सिसकती, करुण दृष्टि से नरेशबा माई को देखती उसके आंचल को मुट्ठी में भींचे झपकी लेने लगी थी. ‘ई सब में एकर की दोष? हे विधाता. किया जनम देलिये...?’ (इसमें इसका क्या दोष? हे विधाता! क्यों जन्म दिया) नरेशबा माई बार-बार आंचल से आंसू पोंछ रही थी. कलेजा कट रहा था.

फिर, समय चक्र तीव्रता से घूमा... असहाय सीता और उसके दोनों शेष बच्चों को सीता के भाई ज़मींदार मंगल पाठक अपने घर ले आये. “मेरी बहन ससुराल में किसी की धौंस क्यों सहे? हमारी ज़मींदारी में हजारों लोग पलते हैं, ये भी सपरिवार रह लेगी.” यह भाई का बहन के प्रति स्नेह नहीं समाज को दिखाने का अहंकार था.

अनपढ़ सीता ने उन सभी महत्वपूर्ण कागज़ों पर भाई के कहने से अंगूठा लगा दिया जो उसे यह कहकर दिये थे कि उसके पति के ज़मीन-ज़ायदाद के कागज़ हैं और अंगूठा लगाते ही सीता के नाम पर हो गये हैं. झूठ का पता तब चला जब मैट्रिक पास कर चुके बेटे को आगे की पढ़ाई के लिए उसने पटना भेजना चाहा.

“पटना में पढ़कर क्या करेगा... क़स्बे में इंटर कॉलेज है या नहीं...? पैसे क्या पेड़ पर उगते हैं?” भाई तमककर बोला था. “लेकिन... इसके पिता की ज़मीन-ज़ायदाद है न... वही बेचकर...” सीता की बात अधूरी ही रह गयी थी. ज़मींदार भाई ने बहन की असहाय अवस्था का फ़ायदा उठाकर सारी ज़ायदाद हड़प ली थी. ऊपर से तर्क यह था कि वो बहन के परिवार का भरण-पोषण तो कर रहा है. किसी तरह अपने जेवर बेचकर उसने बेटे को पटना भेज दिया था. क्या करती, उसे दिखता नहीं था क्या, किस तरह बेटा मामा-मामी के सैकड़ों काम निबटाता सेवक बना फिरता था. ऐसे में उसकी दृष्टि बेटे पर जाकर टिक जाती और मन वितृष्णा से भर उठता... इसी के कारण...! ऐसी ही मनस्थिति में बैठी वो एक शाम बड़ियां और पापड़ छत से उतार रही थी कि पड़ोस की विमला भौंजी आ गयी.

“सीता दाय! ई बेटे के नाम की राखलिये?” सीता के मन में अपनी कही एक बात गूँजी... भगवती के नाम पर इसका नाम... नहीं... अगर देवी मां के नाम पर नाम रखा, तो पूजा-अर्जना के समय भी शांति नहीं पाऊंगी... आते ही पिता को... दो-दो जवान भाइयों को ... उसका मन मथने लगा... न चाहते हुए भी मुंह से निकल गया,

“एकर नाम विपदा (विपत्ति) छै... विपदा!”

“विपदा!”

“हां!”

“लेकिन...? एहन नाम...?”

“हमर बेटे छै... हम जे नाम धरिए... लोगक की...!” (मेरी बेटे है जो नाम रखूं लोगों को क्या?) सीता तमतमा उठी थी. विमला चुपचाप चली गयी थी... नन्हीं बच्ची खिलखिला उठी थी. सीता जब भी उसे पुकारती ‘विपदा’ ही कहती. उसकी देखा-देखी सभी विपदा ही कहने लगे. ए विपदा! बच्चे पुकारते वो तुरंत पलटकर देखती. उस क्षण उस मासूम को क्या पता था

कविता

मर जाणियां

✍ जसप्रीत कौर ‘फलक’

सारा दिन

दादी के दायें बायें घूमतीं

‘दादा-दादी’ पुकारती न थकतीं

दादी की चारों पोतियां

दादी निहारती, पुचकारती, दुलारती

और फिर प्यार से कह देती

“मर जाणियां.”

बड़ी पोती सदैव बालों में तेल लगाती

कंधी करती, रीबन का फूल बना

चांदी रंगे तारों को इकट्ठा कर

सजा देती छोटी सी चोटी,

कोई दादी की छड़ी संभालती

तो कोई दादी के कपड़े और निकसुक.

कभी-कभी दादी बहुत उदास हो जाती,

घर काटने को दौड़ता जैसे

सारा दिन चुप-चुप सी रहती.

दादी सुबह-शाम गुरुद्वारे जाती

छोटी पोती भागी-भागी उसकी चप्पल उठा लाती

और फिर उंगली पकड़ चल देती,

दादी के साथ-साथ गुरुद्वारे,

दादी घंटों हाथ जोड़कर बैठी रहतीं

और रब से मांगती रहती एक पोता

जिसे वो कह सकतीं —

‘जुग जुग जीओ.’

✍ मकान नं. ११, से-१ए,

गुरुज्ञान विहार, डुगरी, लुधियाना.

मो. : ८८७२४७२८३८

कि जिस नाम को सुनकर वो पलटकर, पीछे देखती किलकारी मारती है, यही नाम उसे वेदना के सलीब पर टांग देगा. मां की अवहेलना और मामियों की डांट-फटकार और व्यंग्यवाण झेलते हुए बच्ची बड़ी होने लगी. होश संभालते ही उसे सबसे पहले जो चीज़ चुभी... वो था उसका नाम... ‘विपदा’. और वो इस दंश से कभी उबर ही नहीं पायी... मामियां... मामा... अपनी मां पुरातन क्रिस्सों को उस तरह

इस्तेमाल करतीं जैसे दाल में नमक... दिन में एक बार पुरानी कथा नहीं दोहरायी, तो जैसे जीवन ही बेस्वाद हो जायेगा. सात वर्ष की बच्ची मामियों की चाकरी ही करती रह जाती अगर बड़े भाई ने किसी तरह मामा से कह सुनकर उसे सरकारी स्कूल में दाखिला नहीं दिला दिया होता.

“नाम क्या है?” बड़े मास्टर साहब ने पूछा तो मां झटके से बोल पड़ी थी, ‘विपदा कुमारी.’ उसने बड़े भाई का हाथ जोर से पकड़कर कहा था... “मेरा नाम वो नहीं है... मैं... अपना नाम.... कुसुममाला लिखाउंगी.”

“अच्छा... अच्छा. यही नाम लिखिए मास्टरजी.” भाई तो हंस पड़ा था... पर मां चुप रह गयी थी.

कु...सु...म...मा...ला? मामियां ठठाकर हंस पड़ी थीं... मां ने कहा, अब जो इसकी इच्छा. उस दिन बच्ची बहुत खुश थी... पर धीरे-धीरे खुशी मायूसी में बदलने लगी, घर के सारे लोग, साथ पढ़नेवाले बच्चे और गांव के लोग अब भी उसे ‘विपदा’ कहकर ही बुलाते थे... कुसुममाला नाम रजिस्टर में ही रह गया था. वो बड़ी हो रही थी... चेहरे पर युवावस्था के आगमन का संकेत देती आभा फूटने लगी थी... वो भी छिप-छिप कर दर्पण में स्वरूप निहारती एक सुंदर सपने को मन ही मन जीने लगी थी. पर तभी तक... जब तक कोई नाम लेकर पुकारता नहीं था.... जैसे ही एक पुकार आती, ‘विपदा! कहां हो? क्या कर रही हो?’ वह धरातल पर आ गिरती. समय बीतता रहा वह मन में एक नासूर लिये जीती रही. भाई को ऊंची नौकरी मिली, भाभी आयी और एक दिन पढ़ी-लिखी भाभी ने स्नेह से छोटी ननद से कहा, “माता जी ने आपका नाम ‘विपदा’ क्यों रख दिया? ऐसा कोई नाम रखता है... मैं तो आपको ‘बच्ची’ कहूंगी... ठीक है?” उसने मौन स्वीकृति दे दी थी... कहां कह पायी थी, भाभी! मुझे बच्ची नहीं कुसुममाला कहिए. मन का दर्द सीमाएं लांघ गया था, जब नयी बहू को भी मां बार-बार उसकी जन्मगाथा और नामकरण के क्रिस्से सुनाने लगी थीं. ‘वो’ पढ़ने में अच्छी नहीं थी. किसी तरह मैट्रिक पास कर पायी और विवाह तय हो गया. पर यहां भी नियति एक ‘पता’ फेंक चुकी थी. बड़े भाई ने एक सभ्रांत परिवार के इंजीनियर लड़के से विवाह तय करना चाहा था, पर मामा ने अपना हक जताते हुए एक ज़मींदार परिवार की बहू बना डाला. मां ने भी भाई का साथ दिया... “इंजीनियर लेकर क्या करना है ? धन-धान्य परिपूर्ण घर है... गाड़ी है... जेवरों से लदी रहेगी अभागी... अरे! कभी तो सुख

भोगे... हम भी चैन से रहेंगे. जब से जन्मी है...” सब चुप रह गये थे और काठ हो गयी थी कुसुममाला.

“हमारी बच्ची को बहुत प्यार दीजिएगा ओझाजी!... ये सरल सहृदय है.” भाभी ने हाथ जोड़ लिये थे. “बच्ची अब मेरी पत्नी है भौजी! चिंता मत करिए.” दामाद ने भी सहज भाव से कहा था. उसे इंतज़ार था शायद पति ‘कुसुममाला’ कहकर पुकारे पर... “हमारे यहां नववधु का नाम बदल दिया जाता है, तुम्हे ‘लक्ष्मी’ नाम दिया है... कैसा लगा?” पति ने अंक में समेटते हुए कहा तब भी वो कहां कह पायी कि उसका नाम ‘कुसुममाला’... था. इस बार यह नाम शादी के कार्ड में ही छिपकर रह गया. शादी ‘कुसुममाला’ की नहीं ‘विपदा’ की हुई थी ना.

हम बच्चों ने भी उन्हें ‘बच्ची दीदी’ ही कहा... उनका प्रिय नाम कभी पुकारा ही नहीं जा सका. पता नहीं नियति कभी-कभी इतनी क्रूर क्यों हो जाती है कि सारी वेदना एक ही स्त्री के आंचल में डालकर अट्टहास करती उसका मौन रूदन देखती रहती है. पति के साथ उनका रिश्ता बेहद औपचारिक था... “इससे बात करना तो पत्थर से सर फोड़ना है,” पूफाजी को अक्सर कहते सुना था. समय बीतता रहा. विपदा, लक्ष्मी बनी, फिर मैके के नाम पर रामपुरवाली और फिर शिव की मां. बड़े बेटे ‘शिवजी’ से बुआ का आंतरिक लगाव स्पष्ट झलकता था. तीनों बेटियों के प्रति वो निर्लिप्त-सी थीं. आठ वर्ष का था शिव जब ब्रेन ट्यूमर से पिता की मृत्यु हो गयी. बुआ के जीवन का सारा स्पंदन ही जड़ हो गया और वो पाषाण-प्रतिमा में बदल गयीं. इस बार भी दोष उन्हीं के सर मढ़ा गया... “न जाने कौन सी क्रिस्मत लेकर आयी है... विपदा... विपदा ही रही लक्ष्मी नाम धर देने से हुआ ही क्या? फूटी क्रिस्मत नाम से नहीं बदलती है.” इस घटना के तीन वर्ष के भीतर बुआ ने अपनी मां... भाभी और स्नेहिल भाई को भी खो दिया. उनका अस्तित्व अपने घर के बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी में ही सिमट कर रह गया... वो जीवित थीं, अभी एक और विडंबना से साक्षात्कार जो होना था.

‘शिव’ को बुआ शिवजी कहा करती थीं. उसी को देखकर कभी-कभी उनकी आंखों में चमक सी कौंधकर विलुप्त हो जाती थी. शिव बेहद कुशाग्र बुद्धि का किशोर था... उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसका मधुर स्वभाव, सुंदर विचार आचार-व्यवहार सब कुछ बहुत सुंदर होता जा रहा था. लोग कहने लगे थे, “यही बेटा विपदा का भाग्य

बदल दे. भाग्यवानों को ही ऐसा बेटा मिलता है.” शिव की बी. ए. की परीक्षा खत्म हुई तो वो घर चला आया था. “अब आई. ए. एस. की तैयारी करूंगा मां... देखना मैं बहुत बड़ा अफसर बनूंगा.” बुआ अपने स्वभाव के वशीभूत होकर बोली तो कुछ नहीं थी, पर स्नेह से बेटे का सर जरूर सहला दिया था. पर नियति तो कुछ और ही सोच रही थी. एक रात शिव उनके पास आकर बोला, “क्या तुम जानती हो चाचा मेरी शादी तय करने वाले हैं ?”

“हां!”

“मां, तुम तो जानती हो मैं आगे पढ़ना चाहता हूँ... कुछ बनना चाहता हूँ... ऐसे में अभी...? मात्र बीस साल का ही तो हूँ... कौन-सी उम्र बीत रही है... मां! इस शादी को रोको...” शिव विह्वल होकर बोला तो पीछे खड़े चाचा ने कहा, “सुमन तेरी चचेरी बहन है बेटा, जरा उसके बारे में सोच. उसकी ससुरालवाले अपनी बेटी से तेरा विवाह करना चाहते हैं. अगर तू इस शादी की सहमति नहीं देगा तो वो लोग सुमन को बहू बनाकर नहीं ले जायेंगे. तेरी दो बहनों का विवाह मैंने अच्छे परिवारों में करवाया... तेरे पिता के जाने के बाद तुम लोगों की देखभाल की...”

“तो आप मुआवजा मांग रहे हैं?” शिव ने क्रोध से भरकर पूछा तो चाचा ने जोर से कहा, “जो भी हो तुझे यह विवाह करना ही होगा.” चाचा के जाने के बाद शिव ने मां से पूछा, “क्या तुम मेरा भला नहीं चाहती?”

“मैंने क्या किया है?”

“तुम यह शादी रोक तो सकती हो ना... मां हो मेरी.” शिव चिढ़ गया था.

“आज नहीं तो कल... शादी करनी ही है ना, तो अभी क्या बुरा है?” बुआ ने पूछा तो शिव मौन रह गया. घर में विवाह की तैयारियां जोर-शोर से होने लगी थीं. विवाह से एक दिन पहले शिव जो घर से गया, आज तक नहीं लौटा. कहां है... किसी को पता नहीं... वर्षों बीत गये... बेटे का पत्र छाती से लगाये बुआ ने दस साल बिस्तर पर काटे, संज्ञाशून्य ... जड़वत... संवेदनाहीन... पाषाणी सी बुआ की देह आज नश्वर हुई है, आत्मा तो बेटे के साथ ही चली गयी थी.

मन पीड़ा से भारी हो उठा था. एक स्त्री थी जो जीवनपर्यंत पीड़ा के सलीब पर टंगी रह गयी थी उसे मुक्ति मिल गयी थी.

सात घंटे का सफ़र तय कर बुआ की ससुराल पहुंची. पार्थिव शरीर आंगन में रखा था. चेहरे पर वही चिरपरिचित सन्नाटा था... पर मुक्ति की चमक भी थी... आ जाती हैं कभी-कभी अभिशप्त आत्माएं धरती पर पाप का दंड भोगने. पंडित जी सामान जमाने में व्यस्त थे. बेटियां उनको नहलाकर वस्त्र बदल रही थीं. पुराना ब्लाउज़ उतारकर नया पहनाते वक्रत मेरी दृष्टि उनकी दाहिनी बांह पर पड़ी. ... जहां गोदना गुदवाया गया था...कु सु म मा ला... नीले अक्षरों में बुआ का प्रिय नाम... ओह! इसी गोदने को छिपाने के लिए ये हमेशा पूरी बांह का ब्लाउज़ पहना करती थीं... मैं सोच में थी कि तभी मंत्रोच्चार करते पंडित जी ने बुआ की बेटी मीना से पूछा, “मृतका का गोत्र?”

“कश्यप.”

“पति का नाम?”

“मदन मोहन झा.”

“मृतक का नाम?”

“श्रीमती विप... नहीं लक्ष्मी देवी.” मीना ने कहा तो मैं बेचैन होकर बोल पड़ी, “नहीं, इनका नाम कुसुममाला देवी है. पंडितजी कृपया इसी नाम से क्रियाकर्म करें...”

“नाम में क्या रखा है... विपदा कहिए... लक्ष्मी या कुसुममाला क्या फ़र्क पड़ता है ?”

लोगों में फुसफुसाहट शुरू हो गयी थी. पर मैं जानती थी ‘नाम’ से बहुत फ़र्क पड़ता है. शायद इस नाम से मंत्र पढ़े जाने पर बुआ की आत्मा को चिरस्थायी शांति मिल जाये. मेरी आंखें भीगती चली जा रही थीं... धुंधली आंखों से अंतिम बार बुआ का चेहरा देखती मैं सोच रही थी काश! शिवजी अपनी मां का अंतिम संस्कार कर पाता, अंतिम सांस लेती बुआ ने निस्संदेह ईश्वर का नहीं ‘शिव’ का स्मरण ही किया होगा. पंडित जी मंत्र पढ़ रहे थे...

‘न जायते म्रियते वा... न हन्यते हन्यमाने शरीरे. कश्यपगोत्रीय... पत्नी स्व. मदन मोहन झा... मृतका श्रीमती कुसुममाला देवी...’ चचरी पर बंधी बुआ की मृत देह स्पंदनहीन थी पर न जाने क्यों मुझे ऐसा लगा जैसे चेहरे पर जीवनभर लुप्त रही मुस्कान कौंधकर विलुप्त हो गयी हो.

✉ उर्सलाइन, कॉन्वेंट रोड,

रंगभूमि हाता, पूर्णिया-८५४३०१ (बिहार).

मो.: ९४३०९२७४१८, ८४०९१०२१७९

ई-मेल: Nirupama Roy 25 @gmail.com

यह शहर नहीं मेरा घर है

✍ डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव

कभी-कभी यह कलकत्ता शहर
मुझे अपनी बेटे सा लगता है,
जिसकी शरारतों को मेरी हिदायतें निगल गयी हैं ।
जो जानती है अपनी क्षमता,
और यह भी जानती है कि
वह औरत जात है,
सक दिन ब्याह कर
दूसरों के घर जायेगी ।
जाने कैसा घर होगा, जाने कैसा घर ?
प्यार मांगेंगे लोग, बदले में नफरत देंगे ।
इस शहर के पैसे वालों की तरह ॥

--
कभी मुझे यह शहर
अपने बेटे सा लगता है ।
भावुक, आत्मलीन
डांट पड़ते ही डबडबाई आंखें लिये
परी कथाओं का नायक बना
उड़न तश्तरी लिये चला जाता है
दूर के सितारों के पास ।
अपनी व्यथा सहने के लिये
इस शहर के पास और चारा भी क्या है?

--
फिर कभी लगता है कि यह शहर मेरी बहनों सा है ।
जो इतनी दूर से हर साल राखी भेजती हैं,
बच्चों को मामा की कहानी सुनाती हैं,
और यह मान कर खुश हो लेती हैं,
कि विपत्ति आने पर भैया तो हैं ।
और करे भी क्या यह शहर
सिवाय खुशाफहमियां पालने के ॥

--
कभी यह शहर मुझे
अपने भाईयों सा लगता है ।
अत्याचार देखते ही फुफकारता,
मेरी बगल में सीना तान कर खड़ा हो जाता है ।
फिर जल उठती हैं दिशाएं और
मेरे अकेले होने का अहसास हल्का हो जाता है ।

कभी मुझे यह शहर
अपनी बीबी सा लगता है ।
सुंदरता चीथड़ों में लपेटे,
तत्परता थकी अंगुलियों में भरे,
काल के पहिये के घूमने के इंतजार में,
सुबह से शाम
दरवाजे पर आंखें टिकाये ।
इंतजार करने के अलावा
यह शहर कर ही क्या सकता है?

--
मेरा दुःख सुनते ही
इस शहर में सन्नटा छा जाता है ।
न बच्चे खिलखिलाते हैं
न चिड़िया चहकती है ।
मीलों का धुंआ सड़कों पर फैल जाता है ।
बीच दुपहरिया में सूरज डूब जाता है ।
बसों में बैठे लोग छेड़खानी नहीं करते ।
फुटपाथ पर भिखारी पीछा नहीं करते ॥

मेरे दुःख से सकाकर हुआ
यह शहर चुपचाप ।
मेरी पीड़ा की चादर ओढ़
मेरी व्यथा बांटने को तत्पर हो उठता है ॥

तभी तो कहता हूँ
कि यह शहर मेरी मां जैसा है ।
जब मैं उसे दफ्तर में मिले
अपमान की बातें सुनाता हूँ
तो वह बस चुप हो जाती है
और मैं शांत ॥
अपनी नियति स्वीकारने का ढंग
सिखलाता है यह शहर ॥
यह शहर नहीं मेरा घर है ॥

✉ सी-३/४४ केंद्रीय विहार,
वी. आई. पी. रोड, कोलकाता-७०००५२.
मो.: ९८३६१७६८६८

कमजोर पार्टी

✍ गोविंद उपाध्याय

चौ राहे पर इस समय सन्नाटा था. दाहिनी तरफ अशरफी अंडे वाले की दुकान पर एक बूढ़ा रिक्शे वाला डबल अंडे के आमलेट के साथ ब्रेड स्लाइस को बिन दांतों वाले मुंह में डालकर बहुत तेजी से मसूढ़ों के सहारे चबाने का प्रयास कर रहा था. अशरफी अब दुकान बढ़ाने के मूड में था. पास की चाय की दुकान पर भी सन्नाटा पसरा हुआ था. दिसंबर का जाड़ा अपने यौवन पर था. नहीं तो गरमी के मौसम में तो यहां ग्यारह बजे तक मज़मे जैसा दृश्य होता. अभी ठीक से आठ भी नहीं बजे थे. कोहरे ने धीरे-धीरे अपने पंख फैलाने शुरू कर दिये थे. ऐसे में श्रीकांत जी झूमते हुए अशरफी के टेले पर अचानक जिन्न जैसे प्रगट हो गये — “क्या हाल है बे तेरा...”

अशरफी के चेहरे का भाव उन्हें देखते ही बदल गया था, “बस आपकी दया है मालिक.... पर मैं इस समय आपकी कोई सेवा नहीं कर पाऊंगा. उबला खतम हो चुका है और फ्राई के लिए तेल बिलकुल नहीं है. सब आपके सामने है.... बस टेला बढ़ाने वाला ही था...”

यदि श्रीकांत जी नशे में न होते तो उन्हें अशरफी की झुंझलाहट का पता चल जाता. लेकिन वह होश में कब होते हैं — “ठीक है भाई.... तू साला ठहरा कमजोर पार्टी... कच्चे अंडे तो हैं न... चार पैक कर... घर पर ही कुछ बनवा लूंगा. सीधे थाने से आ रहा हूं. नया एस. ओ. बहुत कड़क है. मगर तू तो जानता ही है. मेरे सामने...”

“मालिक... अंडे... जाड़ा बहुत है. हम चलते हैं. कल फुर्सत में बताइयेगा.” अशरफी ने टेला बढ़ाने का उपक्रम किया. उसे मालूम था, यदि उसने ज़रा भी रुचि दिखायी तो उनका ‘थाना-पुराण’ शुरू हो जायेगा. श्रीकांत जी ने बेशर्मी से दांत निपोरे और लिफ़ाफ़ा लेकर आगे बढ़ गये. अशरफी उन्हें जाते हुए तब तक देखता रहा, जब तक वह धुंध में दिखायी देते रहे. दोनों टांगे फैलाये हुए...

लड़खड़ाते क्रदमों पर अपने कृषकाय शरीर का बोझ संभाले हुए... अशरफी ने एक टंडी सांस खींची और पास में पड़ी मैली-सी नोट बुक में श्रीकांत जी के खाते में चार अंडे और दर्ज़ कर लिये. टेला उसके बाद भी आधा घंटे तक खड़ा रहा था.

श्रीकांत जी अशरफी के लिए शराबी से ज़्यादा कुछ नहीं थे. वही क्यों इस मोहल्ले के अधिकांश लोग उन्हें शराबी और बड़बोला ही समझते. लोग उनका उपहास उड़ाते और उनकी ऊल-जलूल हरकतों का मज़ा लेते थे. लेकिन कुछ लोग आज भी उनकी बहुत इज़्जत करते थे. मैं भी उनमें से एक था. लेकिन क्यों...?

चलिए आज मैं आपको श्रीकांत जी का किस्सा ही सुनाता हूं.

जी हां! मैं श्रीकांत श्रीवास्तव की बात कर रहा हूं. श्रीकांत जी कहानियां लिखा करते थे. तब वह शराब कभी-कभार शौक्रिया पी लेते थे. हां! सिगरेट तब भी वह ख़ूब पीते थे. उनकी कहानियां उस समय की अच्छी साहित्यिक पत्रिकाओं में छपती थीं. जब तक साहित्य में कोई पहचान बन पाती, उन्होंने लाइन बदल दी. उन्हें लगा कि लेखक बनना बेवकूफी का काम है. पढ़ने वालों की संख्या दिनोदिन घटती जा रही है. साला अपने मोहल्ले का आदमी भी नहीं पहचानता. ख़ुद ही बताते फ़िरो कि मैं लेखक हूं कहानियां लिखता हूं.

वह लिख तब भी रहे थे. बस विधा बदल दी. अब वह सत्यकथा लिखने लगे थे. हिंदी में तब सच्ची घटनाओं वाली कई पत्रिकाएं थीं, जो ख़ूब बिकती थीं और पैसा भी अच्छा देती थीं. हालांकि उन्हें रोटी की कोई चिंता नहीं थी. सरकारी महकमे की ठीक-ठाक नौकरी थी. बाप-दादा की संपत्ति के भी इकलौते वारिस थे. पर वह स्वयं अपनी पुस्तैनी ज़मीन के लिए कोई वारिस नहीं दे सके. शादी के पांच साल बाद भी जब बच्चे नहीं हुए तो उन्होंने वे सब मेडिकल जांचें



१५ अगस्त १९६०, कानपुर (उ. प्र.)

: लेखन :

१९८० में पहली कहानी प्रकाशित. सवा सौ से ज्यादा कहानियां देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कुछ कहानियों का बंगला और उर्दू में अनुवाद.

: प्रकाशन :

तीन कहानी संग्रह प्रकाशित : 'पंखहीन', 'समय, रेत, और फूकन फूफा' और 'सोनपरी का तीसरा अध्याय.'

: संप्रति :

रक्षा प्रतिष्ठान में नौकरी.

करा डालीं, जिससे संतान सुख हासिल किया जा सके. पर यह अजीब इतिहास था कि पति-पत्नी दोनों में लाइलाज खामियां निकलीं. संतान प्राप्त करने का कुदरती तरीका सफल नहीं हुआ तो श्रीकांत जी ने पत्नी को एक बच्चा गोद लेने का सुझाव दिया. पत्नी ने इस प्रस्ताव को एक सिरे से खारिज कर दिया, "जब भाग्य में संतान सुख नहीं लिखा है तो इस बात को भूल जाइए. किसी दूसरे की औलाद को पालने से अच्छा है कि ऐसे ही ज़िंदगी काट ली जाये."

और सच है कि उन्होंने 'ऐसे ही' ज़िंदगी काट ली. श्रीकांत जी नौकरी के बाद का समय सत्यकथा के लेखन में देने लगे और पत्नी उनकी सेवा में. स्थानीय थाने में श्रीकांत जी का जलवा था. थानेदार से सिपाही तक सब उनका सम्मान करते थे. जब किसी वारदात पर स्टोरी बनती तो हीरो तो पुलिस वाले ही होते. वही तो उस केस से पर्दा उठाते. पत्रिका में उनकी फोटो छपती. भला यह सब किसे अच्छा नहीं लगता.

श्रीकांत जी को भी अच्छा लगता. दो पैसे भी मिल रहे हैं और दबदबा भी है. कोई भी नया थानेदार आता तो श्रीकांत जी को सलाम करने उनके घर ज़रूर जाता और जो

नहीं जाता तो... तो कुछ दिन प्रतीक्षा करने के बाद अपनी छपी सत्यकथाओं की कुछ पत्रिकाओं के साथ वह खुद ही सलाम ठोकने चले जाते. आखिर उन्हें भी तो दुकान चलानी थी.

श्रीकांत जी के लेखन में कोई रचनात्मकता तो थी नहीं. सब अपराधिक क्रिस्से थे. जिनकी पृष्ठभूमि में तीन ही कारण होते थे — ज़र, ज़मीन और ज़ोरू... वैसे भी उनका मानना था कि उनके लेखन में दम हो या न हो दबदबा तो है. लेकिन वह साहित्य के चक्कर में पड़े रहते तो उन्हें कोई नहीं पूछता और वह गुमनामी के अंधेरे में एक दिन इस संसार से विदा हो जाते.

यह श्रीकांत जी का सोचने का अपना नज़रिया था. हकीकत तो यह थी कि लोग उन्हें सत्यकथा लेखक के रूप में कम पुलिस के बिचौलिए के रूप में ज्यादा जानने लगे थे. कोई व्यक्ति किसी भी मामले में थाने के चक्कर में फंसा तो वह श्रीकांत जी के पास पहुंचता तो वह उसका काम चुटकियों में करा देते. इसके बदले में उन्होंने कभी किसी से एक धेला नहीं लिया. हां! इतना ज़रूर था कि वह यह अपेक्षा रखते थे कि दस लोगों के बीच में उनकी तारीफ़ करेगा. लेकिन कब तक? लोग अपना काम निकलवाते और 'पतली गली' से निकल लेते. वह यह बात भी जानते थे. श्रीकांत जी दिल के बहुत अच्छे आदमी थे. बशर्ते वह नशे में ना हों. शराब धीरे-धीरे उन्हें अपने कब्जे में लेती जा रही थी.

कोई चीज़ हमेशा तो नहीं बनी रहती. सत्यकथाओं की पत्रिकाओं का बाज़ार भी धीरे-धीरे मंदा पड़ने लगा. पहले उनका सर्कुलेशन कम हुआ. फिर नामी-गिरामी पब्लिकेशन वाली सत्यकथाओं की एक पत्रिका बंद हो गयी. उसका मुख्य कारण था दूरदर्शन के समाचार चैनल. जो घटनाओं का सचित्र वर्णन दिन रात अपने चैनलों के माध्यम से प्रसारित करते रहते थे. ऐसे में इन पत्रिकाओं का महत्व कम होता चला गया.

तब श्रीकांत जी उम्र के पांच दशक पार कर चुके थे. अब वह भूतपूर्व सत्यकथा लेखक हो चुके थे. थाने में भी पहले जैसा दबदबा नहीं रह गया था. शौक्रिया तौर पर पीनेवाले श्रीकांत जी अब पूरी तौर पर शराबी बन गये थे. शाम छः बजे के बाद वह किशोरी हलवाई की दुकान की कोनेवाली मेज़ पर बैठकर अदरख वाली एक चाय पीते. दो सिगरेट फूंकते. तब तक कोई न कोई 'मुर्गा' हलाल

होने के लिए आ ही जाता. किसी का बच्चा थाने में चोरी के केस में बंद है. किसी ने अपने पड़ोसी से मार-पीट कर ली है. किसी की बेटी को कोई आवारा लड़का छेड़ रहा है. सब श्रीकांत जी की शरण में आते. कुछ लोग उनकी कमजोरी जानते थे. वह पहले से ही जुगाड़ से आते. जुगाड़ में पूरी बोटल से लेकर क्वार्टर तक हो सकता था. उसी हिसाब से वह उसका काम भी करने का प्रयास करते. जो खाली हाथ आता था, वह उनके लिए 'कमजोर पार्टी' थी. ऐसे लोगों का काम अब वह टालने लगे थे. पैसा वह अब भी किसी का नहीं लेते थे. वह कहते भी थे, "मैं किसी साले से एक कौड़ी नहीं लेता हूँ. यह सोचता हूँ कि समाज के कमजोर लोग हैं. यदि मैं मदद नहीं करूंगा तो कौन करेगा?"

जी हां, यह कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं हो रहा था अब लिखना पूरी तरह बंद कर चुके थे. अब उनकी पहचान एक 'लतिहड़ शराबी' की थी. यह वही दौर था, जब मैं श्रीकांत जी के संपर्क में आया और धीरे-धीरे उनके करीब होता चला गया. इतना कि वह मुझे अपने छोटे भाई जैसा मानने लगे. उनको इस हालात में देखकर बहुत दुःख होता था. लेकिन वह अपने आप में मस्त थे. वैसे श्रीकांत जी जल्दी किसी को अपने आस-पास फटकने नहीं देते थे. मेरे करीब आने का क्रिस्सा भी कम रोचक नहीं है.

छुट्टी का दिन था. मैं नाश्ते के बाद टी.वी. सीरियल देख रहा था. तभी किसी ने आवाज़ दी. बाहर निकला तो श्रीकांत जी थे. कमरे में आये और सोफे पर पसर गये. वह बहुत थके हुए लग रहे थे. उन्होंने किसी भी तरह की औपचारिकता के लिए मना किया और बिना किसी भूमिका के बोलने लगे, "यार गोपाल मैं एक धर्म संकट में फंस गया हूँ. तुम ही मेरा उद्धार कर सकते हो. एक आर्मी का रिटायर्ड कर्नल है. वह लकड़ी की कलाकृति बनाता है. क्या ग़ज़ब की कलाकृतियां. देखोगे तो अपने आप मुंह से 'वाह' निकल जायेगा. वह चाहता है कि उसके बारे में शहर के अखबारों में निकले. मुझे वह बहुत बड़ी तोप समझता है. तुम्हें तो मालूम है कि अब मैं कुछ भी नहीं हूँ. लेकिन मैंने उसे हां कर दी है."

"तो उन्हें आप सच बता दीजिए. आप इतना परेशान क्यों हैं?" मैंने उनसे बिना किसी लाग-लपेट के कह दिया. वैसे भी मैं समझ गया था कि वो क्या चाहते

हैं? उन्होंने मेरी तरफ अचकचा कर देखा और भड़क गये, "यार तुम तो बहुत कमजोर पार्टी निकले. मैं तो तुम्हें अपना छोटा भाई समझता था. लेखक हो... लोकल मीडिया में तुम्हारी पकड़ है. मेरा काम कर दोगे. कर्नल बढ़िया आदमी है. महीने में मुझे दो-चार बोटल शराब मिल जाती है."

मुझे लगा कि वह अभी भी नशे में हैं. मैं उनका सम्मान करता था. बात न बढ़े, इसलिए मैंने कह दिया कि मैं कोशिश करूंगा कि आपका काम हो जाये. उनका काम हुआ भी... कर्नल सचमुच अच्छा कलाकार था. उसने 'ड्रीफ्ट वुड' की ढेर सारी कलाकृतियां बनायी थीं. कर्नल का काम करना अच्छा लगा. मैंने खुद ही उस पर लिखा और अखबार के सभी संस्करणों में अच्छे स्पेस के साथ छपा. यहीं से श्रीकांत जी मेरे निकट आ गये.

मैं उनके घर जाने लगा. उनकी पत्नी मुझे पुत्रवत् स्नेह देती थीं. और श्रीकांत जी....

बहुत ठंड थी उस दिन. सात बजे थे. श्रीकांत जी की नशे में थरथराती आवाज़ सुनायी दी, "क्या कर रहे हो...? आ...आ जाओ..." मैं घर में बोर ही हो रहा था. पैदल दस मिनट का रास्ता था. मैं उनके घर पहुंच गया. कमरे में ब्लोवर चल रहा था. वह बेचैनी से कमरे में टहल रहे थे. मुझे देखते ही बोले, "यार कितनी देर लगा दी...? मेरे लिए बोटल की व्यवस्था करो. मेरे पास पैसा नहीं है और तुम्हारी भाभी भी कुछ देने को तैयार नहीं है. मैं बाद में पैसा लौटा दूंगा."

मुझे बहुत तेज़ गुस्सा आया. यह आदमी मुझे क्या समझता है? इतनी सदी में मुझे शराब मंगाने के लिए बुलाया है. मैं स्वयं को संयत रखते हुए बोला, "भाई साहब पैसे तो मेरे पास भी नहीं हैं..."

"मुझे मालूम था तुम कमजोर पार्टी हो पर फिर भी बुला लिया. किसी से उधार मांग लो. नहीं मांग सकते हो तो दो मिनट में दफ़ा हो जाओ.... साले कमजोर..." उन्होंने मेरी बात को काटते हुए धिक्कारा. मैं गुस्से में बाहर निकला तो भाभी बाहर खड़ी थीं, "भइया जा रहे हो. उनकी बात का बुरा न मानना. नशे में हैं..."

मैंने सोच लिया था. इस बेकार के आदमी से फिर कभी नहीं मिलूंगा. लेकिन ऐसा हो न सका. दूसरे दिन उनके कई फ़ोन मेरे पास आये. मैंने कोई काल नहीं उठाया. शाम को वह मेरे घर पर थे. उनकी आंख में आंसू थे, "तुम

नाराज हो न. शराबी की बात पर क्या नाराजगी. अपनी भाभी को देखो कैसे झेलती हैं मुझे? तुम मेरे छोटे भाई हो. तुम्हें लिखता-पढ़ता देखकर मुझे कितनी खुशी होती है. चलो गुस्सा थूको और जाकर भाभी से मिलो वह बहुत परेशान हैं.” उसके बाद उन्होंने बिना मेरी प्रतिक्रिया जाने स्कूटर स्टार्ट किया और चल दिये.

मैं अपने को बहुत देर तक नाराज न रख सका.

श्रीकांत जी के लिए सभी कमजोर पार्टीं थे. ‘मजबूत पार्टीं’ नामक शब्द उनकी डायरी में कहीं था ही नहीं. एक बार उनकी पत्नी हंसते हुए बोली, “क्या बतायें भइया, मैं तो पहली रात से ही इनकी कमजोर पार्टीं हूं. अब तो यह हालत है कि जो इन्हें पिला दे, उसे छोड़कर बाक़ी सब कमजोर पार्टीं ही हैं. चाहें वह टाटा, बिरला ही क्यों न हो...”

शायद मैं उनके जीवन का इकलौता आदमी था, जिसने उन्हें शराब की एक बूंद भी मुहैया नहीं करायी. उसके बाद भी वह मुझे बहुत चाहते थे. जब वह नशे में न होते तो मेरी ख़ूब प्रशंसा करते. लेकिन वह नशे में कब नहीं होते थे ? टाटा, बिरला, अंबानी.... सब उनके लिए कमजोर पार्टीं थे. एक तरह से यह उनका तकिया कलाम था. हर कोई कभी न कभी उनके लिए कमजोर पार्टीं था.

मैं मुंबई ट्रेनिंग पर जा रहा था. दो हफ़्ते का प्रवास था. श्रीकांत जी से मुलाकात हुई तो उन्हें भी बताया. सुनकर खुश हो गये. “अबे जा रहे हो तो गोवा भी घूम लेना. बहुत मस्त जगह है. और आते समय काजू-फेनी की दो बोतलें लेते आना.”

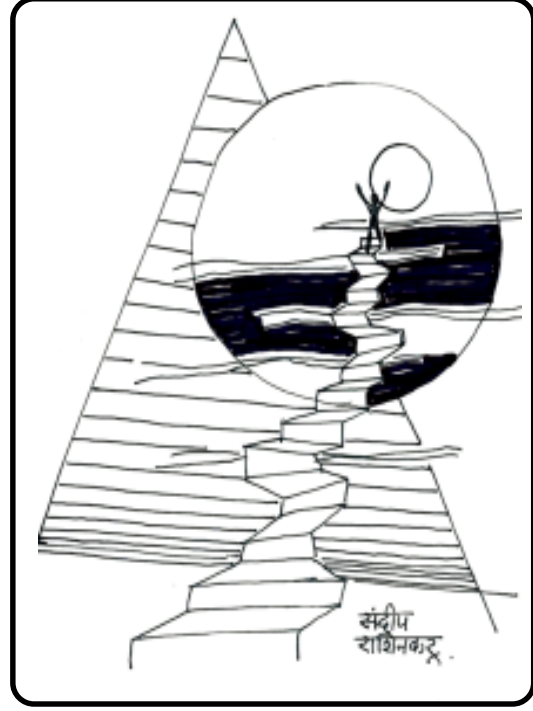
मैं हंस दिया, “यदि गया तो आपके लिए ज़रूर लाऊंगा. मैं इस बार मजबूत पार्टीं बनकर दिखाऊंगा.”

वह खुश हो गये, “तू तो वैसे ही बहुत मजबूत पार्टीं है यार... पर बोतल ज़रूर लेकर आना...”

मुंबई गया तो दो दिन का गोवा जाने का प्रोग्राम भी बन ही गया. इस बार मैंने श्रीकांत जी के लिए काजू-फेनी की बोतल भी खरीद ली.

लेकिन वापस आने पर पता चला कि मैं मजबूत पार्टीं नहीं बन सकता. इस ख़िताब को देनेवाला ही नहीं है दुनिया में...

बोतल मेरी अटैची में थी. मैंने दिन में तीन बार उनको फ़ोन मिलाया. परंतु फ़ोन नहीं उठा. शाम को पता



चला कि श्रीकांत जी को मरे दस दिन हो गये हैं. कोई बीमारी नहीं थी. रात को आठ बजे फ़ोन की घंटी बजी. वह उठाने के लिए लपके, लेकिन भरभरा कर गिर गये. तुरंत ही क्रिस्सा ख़त्म हो गया. शराब ने उन्हें खोखला कर दिया था. दो दिन बाद तेरही थी. तेरही के दिन मैंने दोनों बोतलें बाइक की टोकरी में रखीं और उनके घर की तरफ़ चल दिया. कुछ लोग दरवाज़े पर बैठे थे. कभी यहां इतनी रौनक होती थी कि पूछिए मत... सभी चेहरे परिचित थे. अंधेरा फैलने लगा था. मैंने दोनों बोतलें टोकरी से निकालीं और एक कोने में जाकर उनके ढक्कन खोले. मैं बुदबुदाया, “बड़े भाई शायद आप ठीक थे. मैं कमजोर पार्टीं ही हूं.”

शराब कच्ची ज़मीन पर फैल गयी थी. उसकी तेज़ गंध आस-पास फैल गयी थी. मैं वापस उनके दरवाज़े पर था. लोग खाने के लिए पंक्ति में बैठ रहे थे. एक कोने में मैं भी बैठ गया.

एफटी-२११, अरमापुर इस्टेट,

कानपुर-२०८००९.

मो. : ९६५१६७०१०६

ईमेल - govindupadhyay78@gmail.com

कूलर

विवेक द्विवेदी

मां बिस्तर पर लेटे-लेटे अपनी थैली ढूँढ़ती है और करवट बदल लेती है. थैली नहीं मिलती है तो अचानक चीख उठती है —

‘फिर उसने मेरी थैली छुपा दी है.’

बहू तो कुकुरनिदिया सोती है. दूसरे कमरे से उठकर आती है तो पाती है मां थैली के लिए हाथ इधर-उधर घुमा रही है. लेकिन थैली तो खटिया के नीचे गिरी होती है. कमरे में ज़ीरो वॉट का बल्ब जल रहा होता है. बहू भी गुस्साई आवाज़ में कहती है — ‘मां, सो जाओ. थैली किसी ने छुपायी नहीं है. वह तो नीचे गिरी है.’

फिर थैली उठाकर उसके हाथ में थमा देती है. मां को सोते-सोते भी अपनी ग़लती समझ में आ जाती है. इसलिए कुछ बोलती नहीं, बल्कि चुप रहकर थैली सीने के बीच छिपाकर फिर करवट बदल लेती है. बहू ही भुनभुनाने लगती है — ‘सोते-सोते तंबाकू खाने की तलब लग आती है. जीना हराम कर दिया है. न दिन में चैन और न रात में.’

लेकिन मां की आंखों में नींद नहीं है. मई-जून का महीना. वैसे भी आधी रात तक तपता है. सीलिंग फ़ैन टंडक देने के स्थान पर गरम-गरम हवा फेंकता है. घर पर मात्र दो कूलर हैं. एक नयी नवेली बहू के कमरे में और दूसरा बेटे-बहू के कमरे में. बेटा चाहता है कि एक कूलर मां के कमरे में लगा दे और हम सभी उसी कमरे में ज़मीन पर बिछाकर लेटें. लेकिन मां और पत्नी के बीच छिड़ा द्रंढ युद्ध कभी उसकी सोच को जीवंत नहीं होने देता.

मां का ऐंठना वही बीस साल पुराना गांव वाला था. बहू का मतलब सीने तक घूंघट. बेटा-बहू जब मिलें तो उजाले को भी पता न चले. बहू सास का तब तक पांव दबाती रहे जब तक सास सो न जाये. लेकिन मां भूल गयी है कि अब बहू भी सास बन गयी है. उसका भी अपना वजूद है. लेकिन मां दादी बनने के बाद भी वही सास बनी

हुई हैं. जिसके सामने बहू जुबान खोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाती थी. नाती बहुओं ने सारी सीमाएं खत्म कर दी थीं. नयी बहुरिया तो आते ही दादी मां की बगल में ऐसे बैठती जैसे वर्षों से जान-पहचान हो. आंखों में आंखें डालकर बातें करती. कभी प्यार से गाल भी खिला लेती. कभी फ़िल्मी गाने सुनाकर दादी का मन भी बहला देती.

मां कहती — ‘ये बच्चे हैं. इनकी ग़लतियां माफ़ कर देती हूं.’

लेकिन बहू का मामला दूसरा है. उस पर मां का नैसर्गिक अधिकार है. फिर बेटा पुनीत तो अपना खून है. उस पर तो कहना ही क्या है. बेटा मां भक्त है. यह जानते हुए भी कि मां का ज़िदीपन, अड़ियल स्वभाव और तानाशाही किसी को पसंद नहीं है. लेकिन मां तो मां होती है. इसलिए पत्नी सुरेखा को समझाता चलता.

‘मां है. सहती चलो. अब बचा ही कितना है. ज़्यादा से ज़्यादा दो, तीन साल. देखती नहीं पांव सूज आये हैं.’

‘आप सहिए. मेरे लिए अब असहनीय हो रहा है. देखते नहीं कि बहू के सामने मेरा अपमान कर देती हैं. मैं बेशक सेवा करती रहूंगी लेकिन बोलूंगी नहीं. उतना ही बोलूंगी जितने में काम निकल आये.’

लेकिन सुरेखा कितना भी गुस्सायी हो. ध्यान वही रखती है मां का. मां के शरीर में घमौरियों ने जाल बिछा रखा है. सुरेखा पूरे शरीर में पॉउडर लगाती है. मां कहती है — ‘पुनीत बहू. अपनी इज़्जत अपने हाथ में है. तूने अपनी बहू को सर पर चढ़ा लिया है. मैं इसलिए नहीं बोलती कि तुझे बुरा लगेगा.’

सुरेखा सुन लेती है. लेकिन कोई जवाब नहीं देती. वह सोचती है कि मां तुम्हें क्या जवाब दूं. मां को तो इस बात का अंदाज़ा ही नहीं था कि उसकी बहू कभी सास से भयभीत रही ही नहीं. उसे तो मायके से ऐसे संस्कार मिले ही नहीं कि सास को कभी जवाब दो. उसके मायके वालों



जन्म : २ अप्रैल १९५८, ग्राम बुड़गवा, तहसील सिरमौर,
जिला- रीवा (म. प्र.)

शिक्षा : एम. ए. एल-एल. बी., पी. एचडी.

: लेखन :

देश के महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां आलोचना,
'शब्द शिल्पी', 'आदमी और जानवर' (कहानी संग्रह);
'एक और सच', 'कब समझेगा यह देश' (उपन्यास),
'भीष्म साहनी और उपन्यास साहित्य' (आलोचना ग्रंथ),
'कंकरीट' (उपन्यास धारावाहिक प्रकाशित).

: अनुभव :

फ़िल्मी दुनिया मुंबई में निर्देशन एवं पटकथा लेखन में काम,
नाटकों में अभिनय.

: पुरस्कार :

म. प्र.हिंदी साहित्य सम्मेलन भोपाल द्वारा कहानी 'चेतू का
आषाढ़' के लिए प्रथम पुरस्कार कहानी- 'एक ही रास्ता' के
लिए कमलेश्वर कथा स्मृति पुरस्कार (२०१२).

: संप्रति :

शासकीय नौकरी

ने तो सदैव यही सिखाया कि सास-ससुर तो मां से भी
बढ़कर होते हैं. यदि डांटते हैं तो भी उसमें उसकी भलाई
छिपी होती है. संस्कार ही सेवा में मिले थे. सुरेखा ने तो
यह भी नहीं बताया मां को कि बहू मां जब भी बेटे से मिलने
आती है तो एक ही बात दोहराती है. वह भी मेरे सामने.

'तुम समय से नाश्ता कर लिया करो. सासों कभी
समय से नाश्ता नहीं देतीं. किसी का भाई कभी सगा नहीं
होता. अपने पति तक सीमित रहना सीखो. और बहुत पर्दे-
वर्दे के चक्कर में मत रहो. किसी से डरने की कोई ज़रूरत
नहीं है. समय से क्रदम-ताल मिलाकर चलना सीखो.'

यह कहानी बड़ी बहू के माता-पिता की थी. वह तो
जब पहली बार आयी तो उसी दिन से सिर का पल्लू
निकाल कर प्रदर्शन किया था. पहले तो मां-बाप मायके में

बेटी को जो समझाना होता था समझाते थे. लेकिन अब
स्थिति बदल गयी है. अब तो मां जी बेटी के ससुराल में
आकर बाथरूम से लेकर बेडरूम तक जांचती परखती हैं.
सुरेखा की सास तो शुरू से आग थी आग.

सुरेखा की मां ने कहा था — 'देख समधिन् कैसी
भी हों. लेकिन तेरे बिना एक पल नहीं रह पातीं. सबसे
पहले तेरा ध्यान रखती हैं फिर अपना या दूसरों का. घूँघट
निकलवाना यदि वो अपनी शान समझती हैं तो बेटा घर
की चाबी भी तो तेरे हाथ में सौंपने में उन्हें अपनी शान
लगती है. तुझे जाते ही मालकिन का दर्जा मिल गया यह
क्या कम है. सुरेखा ज़िंदगी एक समझौता है. जो सहता
है वही रहता है. और यह बुराई हर परिवार में होती है.
इसलिए हमें समझौता करके चलना है. इसमें कोई बुराई
नहीं होती है.'

सुरेखा ने कभी सास के दिल को नहीं दुखाया. मन
में गुस्सा हो गयी है लेकिन व्यक्त नहीं किया. मां ने जब
खाना खाया सुरेखा ने गरम ही खाना परोसा था. लेकिन
सास तो सदैव आग की लपट ही रही. उसके स्वभाव की
खासियत थी कि कब किससे और किस बात से नाराज़ हो
जाये उसे ही नहीं पता होता था. फिर पूरा घर मां को
सम्मान से ही देखता.

पुनीत तीन भाई हैं. लेकिन मां पुनीत के पास ही
रहना पसंद करती है. सिर्फ सुरेखा ही उसकी कड़वी ज़ुबान
सुन पाती है. वही समय से मां का ख्याल रखती है.
सुपाड़ी, तंबाकू और अन्य चीज़ों की व्यवस्था करती है. मां
पुनीत से कहती हैं कि — 'तेरी औरत घमंडिन हो गयी
है. दो-दो बहुएं आ गयी हैं न इसलिए. मुझेसे दूर रहती
है. तू मुझे गांव पहुंचा दे. मैं वहीं रहूंगी.'

फिर कभी-कभी सुरेखा से कहती हैं, 'सुन, तू मेरा
जितना अपमान करती है न, देखना एक दिन तेरी बहुएं
भी ऐसा ही अपमान करेंगी.'

उस दिन सुरेखा ज़रूर नाराज़ हो जाती है. सारा
गुस्सा पुनीत पर उतार देती है.

'या तो तुम्हारी मां इस घर में रहेगी या फिर मैं. मेरी
पूरी जवानी खा गयीं और अब बहुआ देती हैं.'

पुनीत जानता है कि मां ने फिर कोई कड़वी बात
बोल दी है. उसे लड़ने की जो आदत है. जब गांव में थी
तो चार औरतें आकर बैठ जाती थीं. यहां तो कोई उसका
कचरा उठाने को तैयार ही नहीं है. किससे कहे. सुरेखा तो

सुनने वाली नहीं। उसे मेहरचौरा सुहाता ही नहीं। उसे तो बात-बात में शिकायत दर्ज कराने की आदत है। नाती-पोतों से लेकर नयी बहुरिया तक की शिकायत रहती है। लेकिन मां कभी-कभी सुरेखा की तारीफ़ भी करती थी।

‘पुनीत बहू जवाब नहीं देती। मैं उसके ऊपर जूठन भी डाल दूँ तो भी चुप ही रही है। फिर भी मैं उसे टाइट करती रहती हूँ। इसलिए दोनों बहुओं को मैंने परदेस रवाना कर दिया। अब तेरे बच्चे भी बड़े हो रहे हैं। इसलिए परदेस इसे भी ले जाना होगा। बच्चों को पढ़ाना है।’

मां ने ही शहर में पुनीत के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा घर बनवाने के लिए ख़रिदवाया था। पड़ोसिन चौबाइन चाची ने सार्वजनिक तौर पर कहा था — ‘जिज्जी तुम्हारा बेटा पुनीत तो हीरा है हीरा। तुम्हारे दोनों बेटे भी बीबियों के गुलाम नहीं हैं। मेरा इकलौता बेटा तो अपनी बीबी के पल्लू से ऐसा बंधा रहता है जैसे वही उसकी पंख हो।’ फिर उसने सुरेखा की तारीफ़ की थी, ‘छोटी बहू तो ऐसी लायक है जैसे बिट्टन काकी की गाय। बिना नाई के कोई भी उसे दुह ले।’

पुनीत जानता है कि इस वक़्त यदि सुरेखा के मन की बात नहीं करेगा तो स्थिति भयावह हो जायेगी। यदि मां की बात नहीं सुनेगा तो मां चिल्लाकर सिर आसमान पर उठा लेगी। पूरा मोहल्ला जग जायेगा। वर्षों की तपस्या भंग हो सकती है। क्योंकि मां का स्वभाव नहीं बदला जा सकता है। मैत्री भाव रख नहीं सकती। उसके स्वभाव में यह है ही नहीं। लेकिन जब भी मां की बात याद आती है तब उसे मां के संघर्ष की बात याद आ जाती है। तीन बेटियाँ, तीन बेटों को उसने कैसे पाला है। पिता के पास एक मात्र सहारा खेती थी। खेती लंबी-चौड़ी होते हुए भी मौसम के ऊपर निर्भर थी। ज़मीन बेचकर बेटों को पढ़ाया और बेटियों की शादी की। फिर बेटों की शादी में शानो-शौक़त के लिए ज़मीन बेचनी पड़ी। पुनीत जब ग्यारहवीं की परीक्षा का फॉर्म भर रहा था तब उसने शहर से अपने दोनों भाइयों के लिए चिट्ठी लिखी थी। दोनों भाइयों ने साफ़ जवाब दे दिया था। हालात काबू में नहीं थे। पिता पांडु रोग के मरीज़ थे। घर पर फूटी कौड़ी नहीं थी। मां उमा काका के पास गयी थी। लेकिन उमा काका ने भरपूर अपमान किया था। फिर कहा था — ‘दो-दो बेटे कमाने लगे हैं। एक फौज में सिपाही है और दूसरा बिजली दफ़्तर में चपरासी हो गया है। तब भी भीख मांगना बंद नहीं हुआ है।’

मां अंदर ही अंदर जल भुन गयी थी। दुखी मन से बोली थी, ‘काका, मैंने कभी भी भीख नहीं मांगी। मैंने भीख दी है और तुम्हें भी दी है। तुमसे करज मांगने आयी हूँ। पुनीत की फ़ीस भरनी है। क्या करूँ लड़के बीबी के कहने पर चलने लगे हैं। उन्हें अपने घर की चिंता ही नहीं है। मां बाप को गली मोहल्ले में बदनाम कराने में ही उन्हें मज़ा आता है।’

और उन्हें जली कटी सुनाकर सीधे घर आ गयी थी। फिर पेटी खोलकर सोने की अंगूठी निकाली और गांव के सुनार के यहां बेच आयी। पुनीत के दोनों भाई चाहते थे कि पुनीत गांव में खेती करे। तब ही उसका खर्च उठायेंगे। लेकिन मां ने सख़्त लहजे में विरोध किया था।

‘अब वह ज़माना नहीं रहा। अब जब मां-बाप का खर्च उठाने में बेटों को तकलीफ़ होने लगी है तब भाई का खर्च कौन उठायेगा। पुनीत भले चपरासी बन जाये लेकिन पढ़ेगा।’

पहले पिता भी चाहते थे कि पुनीत खेती ही करे। क्योंकि घर संभालने वाला भी तो कोई चाहिए। लेकिन बाद में मां के तर्क से सहमत हो गये। ऐसा होता भी क्यों नहीं। दोनों बेटों के रुख ने साफ़ कर दिया था कि उन्हें वही करना जो उनके ससुराल वाले कहेंगे। या फिर बीबी जो कहे वही होगा। पिता ने कई बार दोनों बेटों को बैठाकर यही कहा था। तुम दोनों तब तक मदद करो जब तक पुनीत की पढ़ाई पूरी हो जाये। उसे भी नौकरी मिल जाये तब तुम लोग अपनी-अपनी कमाई में राज करना। यदि तीनों बेटे एक रहोगे तो दुनिया तुम्हारे सामने झुकेगी। अकेले-अकेले टूट जाओगे।

लेकिन पिता को निराशा हाथ लगी। आख़िर सारी उम्मीद पुनीत पर टिक गयी। पुनीत को कॉलेज में ‘लैब अटेंडेंट’ की नौकरी मिल गयी। पिता ने ज़मीन बेचकर पुनीत के लिए शहर में चार कमरों का मकान बनवा दिया। शेष ज़मीन तीनों बेटों को बराबर बांट दी। फिर पुनीत के बच्चों को शहर पढ़ने भेज दिया।

मां ने ही पिता से कहा था — ‘सुनो, अभी तो मैं रोटी बना लेती हूँ। पुनीत के बच्चे राम और श्याम दोनों पढ़ने में होशियार हैं। फिर बिट्टी को शादी के पहले पढ़ाना ज़रूरी है। वर्ना शादी कौन करेगा। आजकल बिट्टिया पढ़ी-लिखी न हो तो ...इसलिए पुनीत बहू को शहर भेजना ज़रूरी है।’

यह बात पुनीत और पिता दोनों चाहते थे। लेकिन मां के सामने किसी की चलती नहीं थी। पुनीत के प्रति मां का समर्पण दोनों भाइयों के लिए अखरने वाली बात थी। दोनों

भाइयों के विरोध के बावजूद मां ने पुनीत को शहर में रहने के लिए घरौंदा बनवाया था. बड़े बेटे ने तो मां को डायन तक कह दिया था.

‘तू डायन है डायन. तूने सारी संपत्ति बेचकर पुनीत पर लगा दी.’ लेकिन पुनीत का बड़ा भाई सचिन, यह भूल गया था कि उसकी नौकरी के लिए मां ने अपने सोने के बाजूबंद बेचकर रिश्तत दी थी. बाद में भले वह बाबू बन गया था. नौकरी के लिए भटकते सचिन के प्रति पुनीत ने ही मां से कहा था, ‘मां, बीबी मिल सकती है, मां-बाप भी मिल सकते हैं लेकिन नौकरी नहीं मिल सकती. भैया ने बहुत पढ़ाई की है. तू एक बार और मदद कर दे.’

तब भी पिता ने हिस्सा बांट दिया था. क्योंकि यही एक रास्ता था घर को बचाने के लिए. पुनीत शहर में नौकरी के लिए पढ़ाई करता और सुबह शाम ट्यूशन पढ़ाता. तीस किलोमीटर साइकिल चलाकर गांव आता. मां-बाप की देख-रेख करता फिर दूसरे दिन चला जाता. छुट्टी के दिन विधायक जी, सांसद जी और अफसरों के यहां चक्कर लगाता. बीस साल पूरे होते ही शादी भी हो गयी. चार साल में दो बच्चे भी हो गये. पिता रात भर जगकर पुनीत के बारे में सोचते, मां उन्हें समझाती — ‘पुनीत के बाबू तुम चिंता क्यों करते हो. पुनीत की नौकरी लगेगी. उसे मेरा आशीर्वाद है.’

पूरे आठ साल के संघर्ष के बाद उसे कॉलेज में नौकरी मिली. लेकिन दो बेटे और एक बेटी का पिता भी बन गया. नौकरी के साथ दूसरे संघर्ष भी शुरू हो गये. पहले वेतन में उसने मां और पिता को धोती और कुर्ता खरीदा था. लेकिन अनजान बच्चों ने पूछ लिया था, ‘पापा, हम लोगों के लिए कपड़े क्यों नहीं आये?’

‘बेटा, शहर में भूल आया हूं. अगली बार आऊंगा तो लेकर आऊंगा.’ पुनीत ने बात बना ली थी. लेकिन सुरेखा की आंखों में आंसू छलक आये थे. उसने पुनीत को आड़े हाथों लिया था —

‘बड़ों को बाद में लाते. अम्मा तो वैसे ही बिना नातियों के खाना नहीं खाती.’ सुरेखा ने कहा था.

‘लाऊंगा सुरेखा. अगले माह ही लाऊंगा. लेकिन तुम्हें पता है कि दो खेत अभी गिरवी हैं. बाबू जी की बीमारी में भी भाइयों ने एक पैसे की मदद नहीं की है.’

पिता ने पुनीत के बच्चों को शहर तो भेज दिया था. लेकिन उनकी याद में तड़पते रहते. मां पर कोई असर नहीं होता था. उसने तो अपने बच्चों को दूध पिलाने के अलावा

कभी गोद में नहीं लिया था. उसका एक ही फॉर्मूला था. खूब खाओ...खूब खेलो और पढ़ो. शाम ढलते ही लालटेन जलाकर बच्चों के साथ वैसे ही बैठ जाती थी जैसे अपने तीनों बच्चों के साथ बैठा करती थी. उसके लिए तो सारे अक्षर भैंस के बराबर थे. फिर जिस तरह उसके बेटों को भ्रम था उसी तरह नाती और नातिन को भी भ्रम था. दादी को सब आता है. मां उनके भ्रम का पूरा फ़ायदा उठाती. और सुरेखा को आदेश देती —

‘सुरेखा तू भी देख उसने इबारत ठीक लिखी है कि नहीं. मुझे तो कुछ गड़बड़ लग रहा है.’

सुरेखा तीनों की पाटी जांचती. मां कहती — ‘सुना तो पप्पू ने क्या लिखा है.’

सुरेखा पाटी बांचती — ‘राम आया था. सीता गयी थी. हनुमान ने लंका जलायी थी.’

मां भड़क उठती — ‘यही लिखाती है. राम आया था. इससे क्या होगा? बच्चों का ज्ञान बढ़ेगा?’

‘लेकिन किताब में तो यही लिखा है.’

‘मूरख, तूने भी कोदौ देकर पढ़ा है. यदि राम को ही पढ़ाना है तो बनवासी राम की कथा लिखा. यह लिखा कि किस तरह राम के अंदर अपने भाइयों और प्रजा के प्रति प्रेम था. यह भी पढ़ा, कि किस तरह राम ने रावण को मारकर पूरे संसार को राक्षसों से मुक्त किया था. उनके आदर्शों को लिखा. बच्चे अपना इतिहास जानें. और लिखाती है, कि राम आया और गया था.’

‘मां राम भगवान थे कि राजा?’ सुरेखा कभी-कभी मां को छेड़ देती.

‘नहीं शैतान थे.’ मां बिगड़ जाती. फिर बोलती, ‘राम भगवान थे या आदमी. मैं नहीं जानती. लेकिन इतना जानती हूं, कि उन जैसा पिता का भक्त, उन जैसा अपनी माताओं का लाल, उन जैसा प्रजापालक और उन जैसा न्याय प्रिय दूसरा कोई नहीं हुआ. उन जैसा कोई भाई भी नहीं हुआ. उनसे अगर सीख सकते हैं सुरेखा, तो यही गुण सीखने लायक हैं. पत्नी के प्रति प्रेम और समर्पण उन्हीं से सीखना चाहिए. एक पत्नीव्रता. इसलिए मैं उन्हें भगवान नहीं आदमी के रूप में ही पूजती हूं.’

‘और मां कृष्ण के बारे में भी बताइए न.’ सुरेखा जब प्रसन्न होती तो मां को मां कहती. अन्यथा अम्मा कहती. जब ‘मां’ कहती तो मां को समझ में आ जाता कि आज बहू खुश है.

‘सुरेखा, किशन तो मायावी था. यह तो समझ में नहीं आता, कि वह आदमी है या भगवान. या फिर कोई छलिया है. कब क्या कर बैठे कुछ भी पता नहीं चलता था. ऐसा मेरे गुरु जी कहा करते थे. लेकिन गुरु जी कहा करते थे, कि राम और किशन में कोई अंतर नहीं है. किशन का काम करने का तरीका निराला था. लोगों को बाद में पता चलता था, कि किशन ने ऐसा क्यों किया था. गुरु जी कहते थे वह सत्य के लिए कुछ भी कर सकता था.’

मां का यह रूप देखकर सुरेखा को आश्चर्य होता था, कि वह मां जो गुस्से में बाबू जी को नंगा कर देती है. किसी को छोड़ती नहीं है. उसके अंदर इतना ज्ञान भी छिपा है. शिक्षा के मामले में इतनी सख्त है कि मुझे भी पढ़ने को कहती है, कि तुम भी पढ़ा करो. पढ़ती रहोगी तो बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पाओगी. ज्ञान कभी बेकार नहीं जाता. पहले की औरतें पाठशाला नहीं जाती थीं लेकिन घर में ही इतना पढ़ा करती थीं, कि अपने बच्चों को...

मां को कभी किसी ने मंदिर जाते नहीं देखा. कभी घर में कोई व्रत-उपवास नहीं किया. पति को परमेश्वर नहीं माना. किसी भगवान को भाव नहीं दिया. कभी गंगा स्नान नहीं किया. लेकिन यदि कोई भूखा घर आ गया है, तो उसे बिना भोजन कराये जाने नहीं दिया. घर से कोई भिखारी बिना भिक्षा पाये वापस नहीं गया है. घर पर पैतृक गुरु की परंपरा का कोई भी सदस्य आया है, तो उसे गुरु की तरह ही सम्मान दिया है. लेकिन कभी आशीर्वाद नहीं लिया. पिता की मृत्यु के बाद पुनीत मां को अपने पास शहर ले आया था. शहर में सुरेखा ही मां की सेवा करती. लेकिन मां तारीफ़ पुनीत की ही करती. सुरेखा के मुंह पर बुरा भला कह देती. सुरेखा, पुनीत से कहती — ‘अपनी मां को समझाओ. इस बुढ़िया की इसी आदत की वजह से ही दोनों बहुएं इससे बातें नहीं करतीं. इसके पास आना भी पसंद नहीं करतीं.’

‘ऐसा मत बोलो सुरेखा. यह सभ्यता नहीं है. वह मां है. अब उसका स्वभाव नहीं बदलने वाला. उसकी इसी आदत के साथ तुम्हें समझौता करके चलना पड़ेगा. खैर कभी उसके पास तुम बैठो तो करो.’

‘मैं उनसे बचती रहती हूं. उनके पास बैठो तो उल्टी-सीधी बातों के अलावा और कोई बात ही नहीं है. नाती-बहुओं को सीने से लगा लेती हैं. मेरे बारे में वही

सौ साल पहले वाली सास हो जाती हैं.’

‘कुछ भी हो तुम्हें वह बहुत चाहती हैं. जिसे आदमी जितना चाहती है उस पर उसका उतना ही अधिकार होता है.’

‘मैं तुमसे कहती हूं कि उन्हें समझा दो. यदि मैं कुछ कह देती हूं तो घर छोड़ने के लिए तैयार रहती हैं. इसलिए मेरे लाडले पति महोदय उन्हें समझाइए. अब मैं भी उम्रदराज हो गयी हूं. सहने की शक्ति कम होती जा रही है. कल पप्पू को ही कह उठी. तू पूरे दिन बीबी के पास क्यों घुसा रहता है. उन्हें नहीं पता है, कि उसकी नौकरी लग गयी. महीने दो महीने में कागज़ जैसे आयेगा अपनी बीबी को लेगा और चलता बनेगा.’

समझता तो पुनीत भी है, कि सुरेखा सही कहती है. लेकिन मां जितनी गुस्सैल है वह उतनी ही लोकप्रिय भी है. पूरा गांव उसे उसकी उदारता और सहयोगी स्वभाव की वजह से चाहता है. लेकिन कटुवाणी की वजह से ही परिवार का कोई सदस्य उसे नहीं चाहता. दूर भागते हैं लोग. गुलफ़ाम चाचा तो मरते दम तक मां की तारीफ़ करते रहे हैं. चाचा डाकिया थे. गुलफ़ाम चाचा जब डाक लेकर आते तो उन्हें कोई पानी के लिए नहीं पूछता था. बिना पानी पिये वापस हो जाते थे. एक बार यही कोई मई-जून का महीना था. सूरज आग बरसा रहा था. चाचा मां के मायके के पड़ोसी गांव के थे. प्यास से उनका गला सूख रहा था. द्वार पर खड़े चिल्ला रहे थे.

‘दिदा.....’ मां को दिदा कहते थे.

मां उनकी आवाज़ पहचानती थी. मां को लगा कि भैया की चिट्ठी आयी होगी. दौड़ती हुई मां बाहर निकली. दरवाज़ा खोलकर अंदर से ही बोली, भाई बैठो. तब तक गुलफ़ाम चाचा बोल उठे.

‘दिदा, तुम्हारी चिट्ठी नहीं है. मैं प्यास से मर रहा हूं. किसी ने एक लोटा पानी तक नहीं पूछा.’

दरअसल गर्मी का समय था. सभी खाना खा पीकर सो रहे थे. काका चिल्लाते रहे और लोगों ने दरवाज़ा ही नहीं खोला. निहारे काका का मनीऑर्डर था. पैसा पाने के बाद जो अंदर गये फिर बाहर आये ही नहीं. लेकिन मां ने तत्काल गुड़ और पानी लाकर तो दे ही दिया. साथ ही यह भी ताकीद कर दी कि जब तक खाना नहीं खा लेते तब तक जाओगे नहीं. उसने चाचा को ओसारी में बैठाकर भरपेट खाना भी खिलाया. चाचा खाना खाकर जैसे ही थाली लेकर धोने चले मां ने उन्हें रोक दिया. बहन के घर पर भाई थाली नहीं धोया

करते. तुम रख दो. महाराजिन शाम को आयेगी. चाचा नहीं माने. उन्होंने अपनी थाली धो ही डाली. फिर चाचा बाबू जी के सामने पड़े तखत पर ही जाकर लेट गये थे. शाम पांच बजे तक सोते रहे. चलते वक़्त बाबू जी ने उन्हें पान, सुपाड़ी और तंबाकू का सेवन कराकर विदा किया.

गुलफ़ाम चाचा को हम लोग मामा कहते थे. उसी दिन शाम को बाबू जी ने निहारे काका को बुलाकर बिना साबुन तेल के धोया था. बहुत ही अपमानित शब्दों का इस्तेमाल किया था. निहारे काका ने दूसरे दिन डाकघर जाकर चाचा से माफ़ी मांगी थी. यह संस्कार था हमारे गांव में. एक ग़लती करता था और दस लोग उससे माफ़ी मांगते थे. मां उसी संस्कार से बनी थी. प्यार तो उसके दिल में लबालब भरा था. लेकिन ऊपर से नारियल की तरह सख़्त थी.

लेकिन मां इन दिनों बहुत परेशान है. पप्पू के ससुराल से जो कूलर आया है वह उसी के कमरे में है. बेटी की शादी में पुनीत इतना कर्ज़दार हो गया है कि एक रुपया भी ख़र्च करना होता है तो दस बार सोचता है. पहले साइकिल से चला करता था. बाद में एक पुराना स्कूटर ख़रीद लिया था. उसके बाद फिर स्कूटर खड़ा कर दिया था और साइकिल से चलने लगा था. एक कूलर और है जो सुरेखा के कमरे में है. सुरेखा बीस दिन से बुखार से पीड़ित है. पुनीत चाहता है कि कूलर बीच वाले कमरे में रख दिया जाये और रात में सभी लोग ज़मीन पर बिछाकर एक साथ लेटें. क्योंकि नया कूलर लेने की स्थिति अभी नहीं है. हर माह छोटे बेटे के लिए भोपाल पैसा भेजना पड़ता है. बेटा भोपाल में इंजीनियरिंग की पढ़ाई करता है. हर माह बेटी की शादी का कर्ज़ मय ब्याज के उसे चुकाना पड़ता है.

मां के कमरे में छत से लटक रहा पंखा दिन और रात दोनों समय आग उगलता है. मां का पूरा शरीर घमौरियों से भर गया है. पूरे दिन शिकायत करती रहती है. गांव जाने की ज़िद करती रहती है. पुनीत चाहता है, कि मां और सुरेखा रात में कम से कम एक कमरे में सो जाया करें. लेकिन न तो मां तैयार है और न ही सुरेखा. सुरेखा कहती है कि कूलर मां के कमरे में रख दो. लेकिन इसके लिए मां भी तैयार नहीं है. दिन में सुरेखा को देखने के बहाने उसके कमरे में जाकर कूलर की हवा ले आती है. लेकिन रात में वह सो नहीं पाती. कूलर भी पंद्रह साल का पुराना हो गया है. हवा भी ठीक से नहीं देता. तब भी सुरेखा ने कूलर मां के कमरे में रखवा दिया है, खुशी-खुशी से. क्योंकि वह भी मां

को इतना प्यार करती है, कि उसका कष्ट नहीं देख पाती. मां इसी बात पर गरम हो गयी है.

‘पुनीतवा, तू मुझे कसाई समझता है. मेरी बहू आज बीस दिन से बुखार से तप रही है और तूने कूलर यहां रख दिया है. इसी वक़्त उठा और बहू के कमरे में रख कर आ. जब पैसा होगा तब एक छोटा सा कूलर ला देना.’

मां ने पूरे घर को चौंका दिया था. सुरेखा रो पड़ी थी. पुनीत ने अपने आंसू छिपा लिये थे. पप्पू को यह रहस्य समझ नहीं आया था. तब मां को समझाते हुए कहा था. मां नौकरी लगते ही मैं कूलर ख़रीदूंगा. लेकिन पुनीत उस दिन छोटा कूलर ख़रीदने के लिए दुकान दर दुकान भटकता रहा. तीन हजार में एक छोटा प्लास्टिक का मिल रहा था. लेकिन दो या तीन किशतों में ही दे रहे थे. पुनीत चाहता था कि कम से कम छः किशतों में मिल जाये. पुनीत हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था. उसे तीन हजार की रकम तीन लाख के बराबर लग रही थी.

मां सोते-सोते रात में उठ जाती. फिर पंखा बंद करके आंगन में निकल जाती. थोड़ी राहत मिलती तब अंदर आती. फिर आंगन में जाती और पुनीत के कमरे में दरवाज़ों की संधि से झांकती. पुनीत और सुरेखा ज़मीन पर दो दिशाओं में लेटे सो रहे होते. सुरेखा कभी-कभी रात में कराह उठती थी. मां उठकर दरवाज़े के पास जाती और संधि से देखकर रो पड़ती. उसका बुखार मियादी हो गया था. दो दिन से थोड़ी राहत थी. उसको सुकून मिल जाता. उसे लगता कि यह तो ग़रीब का घर है इसलिए दरवाज़े भी संधि से झांकने की इजाजत दे देते हैं. यदि पुनीत के साहब का घर होता तो अंदर भी न झांक पाते. रात में तीन बजे के बाद उसे ठंडक महसूस होती. तब जाकर उसे नींद आती. पुनीत भी रोज़ रात में कई बार उठता. देखता मां खुले बदन बिस्तर में करवट बदल रही होती. कभी-कभी तंबाकू मल रही होती. पुनीत तड़प उठता. कई बार उसने मां से कहा कि तुम कूलर में सो जाओ मां. मैं तुम्हारे कमरे में सो जाता हूँ. लेकिन ज़िदी मां कभी न सुनती. पुनीत को सदैव अतीत याद आ जाता. वह बाबू जी से कहा करती, ‘अजी सुनते हो. तुम कुठली का चना बेचकर पुनीत के लिए एक सूटर ख़रीद दो. एक शर्ट पहनकर कॉलेज जाता है. ठंड लग गयी तो...’

‘ट्यूशन पढ़ाता है. एक सूटर अपने लिए ख़रीद ले. मैं चना नहीं बेचने वाला. अभी खेत के लिए खाद

खरीदना है.’

‘तुम कितने निर्दयी बाप हो? पेट में बच्चों को पालते तो पता चलता. एक बूंद चुआकर सारी जिम्मेदारी से मुक्त हो गये. सुबह पुनीत का सूटर आ जाना चाहिए. वरना फिर जानते हो...’

‘ठीक है बाबा. अब तू सो जा. कल ला दूंगा. नहीं डालूंगा खेतों में खाद.’

यह सब याद करके पुनीत अंदर ही अंदर तड़प उठता है. कैसे वह मां का कर्ज उतार पायेगा. पुनीत रात में दो चार बार उठकर तो देखता ही है. आजकल रात में अपने कमरे का दरवाजा खोल देता है. ताकि कूलर की हवा मां के कमरे तक जाये. अंदर का पंखा कूलर की हवा खींच लेगा. यद्यपि सुरेखा अक्सर बंद कर देती है. उसे मां का ताना सुनना पसंद नहीं है. कई बार मां ने कहा था कि ये दोनों कितने बेशरम हो गये हैं कि अंदर से दरवाजा भी नहीं बंद रखते. लेकिन स्थितियां बदल गयी हैं. अब सुरेखा भी दरवाजा नहीं बंद करती. अब उसे भी मां की बात बुरी नहीं लगती.

एक दिन सुरेखा सुबह-सुबह उठी तो उसकी आंखें चकरा गयीं. उसने पुनीत का पैर पकड़ कर हिलाया तो पुनीत भी उठ गया. लेकिन पुनीत ने भी जो देखा उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ. मां, पुनीत और सुरेखा के पांव की ओर फ़र्श पर सर के नीचे तकिया रखे आराम से सो रही है. यह देखकर दोनों की आंखें भर आती हैं. सुरेखा सोचती है कि रोज़ मां सोने आ जाती हैं. कभी-कभी मां का तकिया इस कमरे में छूट जाता है. इस रहस्य को सुरेखा कई दिनों से सुलझाना चाहती थी. लेकिन सुलझा न सकी. आज मां की नींद कुछ ज्यादा ही गहरा गयी है. पुनीत की डकार फूट पड़ती है. वह अपने आप को रोक नहीं पाता. मां की नींद अचानक खुल जाती है.

‘मैं यहां कैसे आयी? और तुम लोग रो क्यों रहे हो?’ मां की आवाज़ में वही रुआब है. दोनों को कुछ न बोलते देख मां फिर बोल उठती है —

‘मां पैर की तरफ़ सोये या सिरहाने की तरफ़, रहेगी तो मां ही न. मां इसीलिए मां कहलाती है, कि उसके लिए बच्चे बच्चे ही होते हैं. मां तो सदैव बच्चों के टट्टी-पेशाब के बीच सोती है. वह जब डांटती है तब भी मां ही होती है. बच्चे ही नहीं समझ पाते, कि मां चाहती क्या है? यदि बच्चे भी समझ जायें तो रिश्ता कभी कमज़ोर हो ही नहीं सकता. चलो उठो. बहू को उठाओ जाकर, चाय

गज़ल

डॉ. दीप बिलासपुरी

इससे मत खेल ये मिट्टी में मिला देती है ।
आग तो आग है हर शै को जला देती है ॥

जब बगावत पे उतरती है सितमकश-जनता ।
तख्ते-शाही को घड़ी-भर में गिरा देती है ॥

खिश्ते-बुनयाद के ऊपर ही मकां टिकता है ।
गर हिले तो ये इमारत को हिला देती है ।

ये शरीफ़ों की शराफ़त को निगल जाती है ।
मुफ़िलसी फर्द का ईमान डिगा देती है ॥

ये वो जनता है बहुत ‘दीप’ है ताकत इसमें ।
ये सितमगर की हुकूमत को मिटा देती है ॥

ग्रोवर क्लीनिक, बिलासपुर
(यमुनानगर), हरियाणा-१३५१०२
मो. : ९०५०४४८९३२९

का वक्रत हो गया है. और इस घर में एक ही कूलर काफ़ी है. आखिर हवा ही तो चाहिए. बंद करो यह रोना-धोना.’ मां ने सख्ती से कहा और फिर सख्त मां बन जाती है.

उस दिन से सुरेखा के लिए मां का अर्थ कुछ और हो गया है. हालांकि मां का अर्थ तो एक ही होता है. और वह है सिर्फ़ मां. लेकिन वही मां जो पूरे घर के लिए आग की भट्टी जैसी थी आज वही मां उस पूरे घर के लिए कूलर जैसी हो गयी है. पुनीत के सामने अब कोई समस्या नहीं है. उसकी सारी चिंता तो मां ने पहले ही मकड़ी के जाल की तरह अपने अंदर समेट ली है. उसने सुरेखा से ठीक ही कहा है —

‘सुरेखा जब मां, गुस्सा दिखाया करे तुम चाय बनाकर ला दिया करो और मैं मां के लिए तंबाकू मलने लगा करूंगा. जानती हो क्यों?’

‘क्यों?’

‘मां इतना ही चाहती है. उसकी ज़रूरत ही इतनी ही है. ये चीज़ें उसके सम्मान से जुड़ी हैं.’

सुरेखा ने अपनी सहमति में सर हिला दिया.

राजीव मार्ग, निराला नगर,
रीवा (म. प्र.)-४८६००२
मो.-९४२४७७०२६६

सजा

✍ नरेंद्रकौर छाबड़ा

पांचवीं क्लास में पढ़ने वाली सलोनी और अनोखी रोज ट्यूशन के लिए मोहल्ले के पिछवाड़े में बनी नयी कॉलोनी में जाती थीं. दोनों पैदल ही बतियाते हुए चली जातीं. दो घंटों की ट्यूशन के पश्चात घर लौटतीं.

एक दिन अनोखी की तबियत ठीक नहीं थी अतः सलोनी अकेली ही चली गयी. ट्यूशन समाप्त होने पर जब वह लौट रही थी तो एक ४०-४५ वर्षीय प्रौढ़ पुरुष ने उसे पुकारा – “बेटी जरा मेरी बात सुनो एक काम कर दोगी?” सलोनी भयभीत हो उसे देखने लगी.

“देखो तुम उधर से जाती हो न तो वहां कोने पर लालरंग का लेटर बॉक्स है मेरी एक चिट्ठी उसमें डाल दोगी?”

सलोनी कुछ सहज होकर बोली – “ठीक है अंकल.”

“में तुम्हें चिट्ठी देता हूं तुम अंदर आ जाओ.” सलोनी ने जैसे ही अंदर पैर रखा प्रौढ़ ने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया.

उस कॉलोनी के एक घर में हाल ही में शादी हुई थी. तीन किन्नर तालियां बजाते हुए शगुन वसूली के लिए जा रहे थे. इस घर के सामने से गुजरते हुए उन्हें किसी बच्ची के रोने

की आवाजें तथा सिसकियों के बीच ‘अंकल मुझे छोड़ दो घर जाने दो’ की अस्पष्ट सी आवाजें सुनाई दीं. एक किन्नर ने कहा – “लगता है यहां कुछ गड़बड़ है चलो देखते हैं.” तीनों ने दरवाजा खटखटाया, फिर उसे जोर से धक्का मारा दरवाजा खुल गया. उन्होंने देखा वह प्रौढ़ उस मासूम बच्ची को दबोचे हुए अपनी वासना का शिकार बना रहा था. तीनों किन्नरों ने दौड़कर बच्ची को उसके चंगुल से छुड़ाया फिर लातों घूसों से उसकी जमकर पिटाई की. एक किन्नर ने कहा – ‘हमारे अधूरेपन का ये लोग मजाक उड़ाते हैं और अपनी वासना का शिकार बच्चियों को बनाते हैं चलो इसकी मर्दानगी को खत्म करके इसे अपनी जमात में शामिल कर लेंते हैं यही इसकी सजा है.’

अगले ही क्षण उन्होंने जेब से उस्तरा निकाला, उस प्रौढ़ को दबोचकर उसका अंग भंग किया और उस बच्ची का हाथ पकड़ बाहर निकल गये. अब कमेरे से उस प्रौढ़ पुरुष की सिसकियां और कराहने की आवाजें आ रही थीं.

✍ १८४ सिंधी कॉलोनी, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००५ (महाराष्ट्र), मो. ०९३२५२६१०७९

दो गज़लें

शाम सवेरे ढलता तो है ।
लेकिन चांद निकलता तो है ।

लगता तो है वो काबू में,
सबको देख मचलता तो है ।

कोई पूरा भले नहीं हो,
सपना मन में पलता तो है ।

परवानों की जानें लेकर
आखिर मोम पिघलता तो है ।

पत्थर जो पानी में डूबा,
कतरा-कतरा गलता तो है ।

मन परवाजो पर रहता है,
तन धरती पर चलता तो है ।

✍ नवीन माथुर ‘पांचोली’

घर के अंदर का जो घर है,
उसमें रहता सारा डर है ।

बाहर जितना जिसका डर है,
जो जितना अंदर कायर है ।

मुश्किल इसकी तह तक जाना,
मन तो इक गहरा सागर है ।

कैसे सबकी नीयत भापे,
शक खुद की भी नीयत पर है ।

वो हमसे उकता-उकता है,
जो हमसे मिलता अक्सर है ।

उसका गम से रिश्ता क्या है,
जिसका तो सीना पत्थर है ।

✍ अमझोरा, जिला धार (म. प्र.)-४५४४४१. मो. : ९८९३११९७२४



आमने-सामने

'चाहत के पांव कभी थमे नहीं!'

✍ डॉ. विवेक द्विवेदी

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निह्वावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांला, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त और सविता बजाज से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. विवेक द्विवेदी की आत्मरचना.

मैं एक बहुत ही पिछड़े गांव में पैदा हुआ। जहां आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी आज तक आवागमन की सुविधा नहीं है। पिता आज़ादी के पूर्व विदर्भ में पुलिस में नौकरी करते थे। बाद में म. प्र. के गठन के बाद जबलपुर में आ गये। पिता चौथी पास थे और मां अंगूठा छाप। किंतु मेरा परिवार खेतिहर परिवार था। बचपन बहुत सुखद था। पिता इलाहाबाद के थे। मां रीवा की थीं। पूरा परिवार रीवा के एक गांव बुहगवा में बस गया था। बचपना गांव में बीता। लेकिन सातवीं पास करते-करते शादी कर दी गयी। मैं दो भाई और एक बहन के बीच सबसे छोटा था। भाई और बहन तो जबलपुर में पढ़े। लेकिन मुझे नौवीं से रीवा में होस्टल में डाल दिया गया। लेकिन मेरी शिक्षा रीवा, राजनांदगांव, रायपुर, पन्ना और भोपाल में हुई। जब मैं कक्षा तीसरी में था तब मां के साथ जबलपुर में एक फ़िल्म देखने गया था। वह दिन आज भी याद है कि जिस दिन मुझे फ़िल्मों में हीरो बनने की चाहत पैदा हुई थी।

तबसे लेकर आज तक वह चाह अपनी जगह यथावत बनी रही।

घर पर साहित्य और कला से दूर-दूर तक रिश्ता नहीं था। बड़े भाई पुलिस में थानेदार हो गये थे। पिता चाहते थे कि मैं एस. पी. बनूं। १९७५ में जब मुझे इंजीनियरिंग में दाखिला लेना था मैं सब कुछ छोड़कर मुंबई हीरो बनने के लिए भाग खड़ा हुआ। नियति को तो कुछ और ही मंजूर था। बीच रास्ते में पकड़े गये। मुझे बड़े भाई एस. डी. शर्मा के पास राजनांदगांव (छत्तीसगढ़) भेज दिया गया। जब मैं दिग्विजय महाविद्यालय में बी. एससी. का छात्र था, तब पहला उपन्यास 'दौलत' लिखा। लेकिन भैया ने उसे मिट्टी का तेल डालकर जलवा दिया। स्कूल और कॉलेज दोनों जगह नाटकों में निरंतर भाग लेता था। मुझे अंदर से लगता था कि एक दिन मैं बहुत बड़ा कलाकार बनूंगा। १९९७ में मेरी पहली कविता 'सवेरा संकेत' राजनांदगांव के अखबार में छपी। जिसे मैंने भैया की नज़र छिपाकर रखा था। उत्कृष्ट

छात्र होने के बावजूद १९७८ में फिर मुंबई पढ़ाई छोड़कर भाग गया. इस बार पूरा परिवार मेरे खिलाफ़ हो गया. राजनांदगांव से लेकर मुंबई तक भैया ने एक कर दिया. फिर वापस लौटना पड़ा. मेरी रुचि जिस रफ़्तार से फ़िल्मों में तेज़ होती जाती परिवार उतना ही सख़्त हो जाता. फिर पकड़ा गया. तब, भैया रायपुर आ गये थे और बी. एस.सी. अंतिम वर्ष के लिए मैं रायपुर साइंस कॉलेज में भर्ती हुआ. १९७९ में भोपाल आ गया और १९८० में सातवीं बार मुंबई पहुंच गया.

जो सपने देखा था उसे पूरा करना था. इस बार एक रिश्तेदार के यहां डेरा जमाया. और कुछ दिनों बाद दीवाली में एक खोली ले ली. पूरे दिन काम की तलाश करता. उस दौर के सभी निर्माता, निर्देशकों से मिला. तीन रुपये रोज़ की नौकरी की. वाचमैनी की. जोगिंदर फ़िल्म निर्माता की फ़ैक्ट्री में मैनेज़री की. पृथ्वी थियेटर से जुड़ा. उस दौर के सभी कलाकार जो मेरे जैसे बैंक ग्राउंड के थे यही करते रहे. कई-कई दिनों तक भूखा रहा. मुर्गी के छोड़े गेहूँ को धोकर तवे में सेंककर नमक के साथ भुने गेहूँ खाया. पूरे नौ-दस माह के संघर्ष के बाद फ़िल्मी खलनायक देव कुमार से जुड़ा. फ़िल्म 'निर्मोही' बना रहे थे जिसमें खैयाम संगीतकार थे. अरुण गोविल हीरो थे और शोभा आनंद हीरोइन. मैं प्रोडक्शन मैनेजर और निर्देशन में भी सहायक था एवं पहले भी कई फ़िल्मों में क्लिपिंग कर चुका था.

गाड़ी पटरी पर आ गयी थी. प्रकाश मेहरा, बी. आर. चोपड़ा जी के संपर्क में आया. कई लोगों के साथ पटकथा की बैठकों में जाने का अवसर भी मिलने लगा. जिससे अभिनय का काम मांगता वही सलाह देता कि तुम लेखन और निर्देशन में काम करो. भगवान दादा (हास्य कलाकार) ने मुझे प्रकाश मेहरा से मिलवाया था. सी. के. दुबे हास्य अभिनेता ने शत्रुघ्न सिन्हा से. एक ए. के. निगम कैमरा मैन थे. उन्होंने मुझे अपना असिस्टेंट रख लिया था. इस तरह मेरी रोज़ी-रोटी छोटे-छोटे कामों से चल निकली थी. लेकिन मैं कहीं यह भूल गया था कि मेरी शादी हो चुकी है. घर पर वह मेरा इंतज़ार कर रही है. ढाई साल तक मैं घर आया ही नहीं. मेरे समय में ही ओमपुरी, नसीरुद्दीन शाह और राज बब्बर जैसे लोग पृथ्वी थियेटर से जुड़े थे. शम्मी कपूर, जेनिफर, शबाना आजमी और कैफ़ी आजमी से ऐसे ही मिलना हो जाता. देव कुमार जी से काफ़ी संपर्क था. देवानंद, राजेंद्र कुमार और मनोज कुमार जी जैसी हस्तियों

से उन्हीं के साथ मिला. बहरहाल तब मुंबई में टी. वी. का दौर नहीं था. जो स्ट्रगलर थे लगभग सभी परिचित हो चले थे. एक तरफ़ निर्देशन का काम सीखता तो दूसरी तरफ़ पटकथा में गहरी रुचि पैदा हो गयी थी. इसलिए मेरा पूरा ध्यान इन दोनों विषयों पर केंद्रित हो गया था.

इस बीच, खासकर. शुरुआती दौर में. अपनी कुछ कहानियां लेकर मैं धर्मवीर भारती जी के पास गया. कहानी के बहाने मैं नौकरी मांगने जाता. उन्होंने मुझे माधुरी के संपादक विनोद तिवारी के पास भेज दिया. यद्यपि धर्मवीर भारती जी और विनोद तिवारी जी ने मुझे लेखन की ओर प्रेरित किया और नवनीत के तत्कालीन संपादक गिरिजा शंकर त्रिवेदी ने मेरी कई कहानियां नवनीत में छापीं. पहली बार नवनीत से मुझे पचहत्तर रुपए पारिश्रमिक मिला था.

वर्ष १९८३ में जीवन की दिशा ही बदल गयी. मुंबई में जितना संघर्ष किया वह सब बेकार हो गया. तय तो यह हुआ था कि मुंबई से या तो सफल होकर लौटूंगा या वहीं पर मर खप जाऊंगा. लेकिन पिता जी की बीमारी, पत्नी के प्रति ज़िम्मेदारी और परिवार के आग्रह ने मुझे मुंबई से बुलाया तो अल्पकाल के लिए था, लेकिन मुंबई ने जैसे मुझे पूरी तरह से निष्कासित कर दिया था—एक यात्रा जो वहीं पर अधूरी रह गयी थी.

घर लौटकर अवसाद में डूबने तक का मौक़ा नहीं रहा. फिर अधूरी शिक्षा को पूरी करना और परिवार के प्रति ज़िम्मेदारी के निर्वाह में जुट गया. लेकिन जीने का एक मकसद शेष था, वह था लेखन. पन्ना में शासकीय नौकरी में रहते हुए म. प्र. लेखक संघ के संपर्क में आया. ताबड़तोड़ कहानियां लिखना शुरू किया. १९८३ में ही पहले बेटे सुमिताभ का पिता बना. पुत्र का जन्म मेरे जीवन में सुखद रहा. १९८६ में म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन भोपाल द्वारा राष्ट्रीय कहानी शिविर चित्रकूट में आयोजित हुआ. जिसमें देश के लगभग सभी दिग्गज साहित्यकार आये. मुझे पहली बार कहानी 'चैतू का आषाढ़' के लिए प्रथम पुरस्कार मिला. यह पुरस्कार जबलपुर में हरिशंकर परसाई और मुकुट बिहारी पांडेय को भवभूति अलंकरण के साथ भीष्म साहनी जी के हाथों दिया गया. इसी पुरस्कार ने मुझे युवा कहानीकार के रूप में पहचान दी. आगे चलकर मैंने भीष्म साहनी के उपन्यास साहित्य में शोध भी किया. जिसे वाणी प्रकाशन ने छापा.

मैं देश की कुछ चुनिंदा पत्रिकाओं में छपने लगा.

लघुकथा



नाम में क्या रखा है ?

✍ चित्त एंजम गोप

अखबार में मेरा नाम छपने के कारण आज मेरे मन में खुशी की लहरें दौड़ रही थीं। दिमाग में दिवास्वप्न चल रहा था, नामी होने का। उधर जनगणना का काम भी करता जा रहा था। मन कभी-कभी खिन्न हो उठता था जब आदिवासी लोग अपने बाल-बच्चों का नाम नहीं बता पाते थे। बोने लाल मरांडी काफ़ी उद्विग्न था। वह मेरे इर्द-गिर्द घूम रहा था। वह चाहता था कि जल्द-से-जल्द उसके घर जाकर उसके परिवार का नाम लिख लूं। सरकार जब नाम लिखवा रही है तो कुछ-न-कुछ ज़रूर मिलेगा।

बोने लाल के पहले एक बुढ़िया का मकान पड़ता है। विधवा सास-पुतोहू साथ रहती है। पुतोहू मज़दूरी करने गयी थी और बुढ़िया भेड़ चराने। मैंने मकान का हुलिया देखा। बूढ़ा मकान आगामी जनशून्यता को प्राप्त होने के पहले ही अपने को ढाह देना चाहता था। अपना नामोनिशान मिटा देना चाहता था।

बोने लाल दौड़कर बुढ़िया को बुला लाया। एक हाथ में लाठी थामे वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। उसके बदन पर नाम मात्र का कपड़ा था। मैंने पूछा, “दादीजी, आपका नाम क्या है?” मेरा प्रश्न सुनते ही उसके चेहरे की मायूसी गहरी हो गयी। वह कुछ देर तक सोचने लगी। फिर अपने माथे पर हाथ रखते हुए बोली — “नाम?... नाम तो भूल गयी हूं बेटा।”

“क्या कहती हो दादी, अपना नाम भूल गयी?”

बुढ़िया के ‘हां’ शब्द के साथ हार करके उसका मुंह खुल गया था। मुंह में हिलते हुए केवल दो दांत बचे थे। बोली, “कुछ भी लिख दो न बेटा, नाम में क्या रखा है?”

बुढ़िया का उत्तर सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मुझे शेक्सपियर की वह उक्ति याद आ गयी — व्हाट इज़ इन द नेम?

✍ सेंट्रल पुल कॉलोनी (बेलचढ़ी), पो व थाना-निरसा,
जिला.: धनबाद (झारखंड)-८२८२०५.
मो. ९९३१५४४३६६

जब मैं विधि की डिग्री लेने के बाद १९८९ में एम. ए. हिंदी का छात्र था तब मेरी कहानियों में ‘युवा कहानीकार विवेक द्विवेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व’ विषय पर लघुशोध प्रस्तुत किया गया। एक तरफ़ जहां मेरा संघर्ष द्रोपदी की चीर की तरह बढ़ रहा था वहीं मेरा उत्साह दूना बढ़ता जा रहा था। देश के कई साहित्यकारों के संपर्क में आ चुका था। लेकिन उन दिनों ज्ञानरंजन जी और कमला प्रसाद जी दो ऐसे संरक्षक मिले जिन्होंने कइयों की तरह मुझे भी गढ़ने में मदद की। इन दोनों का योगदान अप्रतिम था। यद्यपि आगे चलकर बिहार के महान कहानीकार मिथिलेश्वर

जी एक बड़े भाई की तरह जीवन में आये। उनके योगदान के लिए चिर श्रृणी रहूंगा।

बचपन जितना खुशहाल था जवानी का संघर्ष याद करता हूं तो आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुंबई में आया उतार-चढ़ाव अंदर से मजबूती प्रदान करता था। अपमान को रचनात्मक बना लेता था। कहानियां संपादक जी के पास भेजता और कहानी “आशा है आप अन्यथा नहीं लेंगे” के साथ वापस लौट आती। बीच में आर्थिक रूप से स्थिति बहुत कमजोर हो गयी थी। उस दौरान सरिता, मुक्ता और उनकी सहयोगी पत्रिकाओं ने मुझे छापा भी और आर्थिक रूप

से मदद की। यद्यपि बाद में, मैंने इन पत्रिकाओं में लिखना स्वयं बंद कर दिया। हरिशंकर परसाई जी और बांदा के कवि बाबू केदारनाथ अग्रवाल जी ने मुझे ऐसा करने को कहा था। फ़िल्मी दुनिया में इतना खोया था कि साहित्य की समझ बहुत देर बाद विकसित हो पायी। इस बीच मैंने कई बड़े साहित्यिक आयोजनों में भाग लिया। नियमित रूप से छोटी-छोटी गोष्ठियों में जाकर भाग लेता था। लोगों को सुनता, समझता और फिर उस पर चिंतन करता। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

अरविंद जी जब आपका फ़ोन 'आमने-सामने' के लिए आया तो आप यकीन नहीं करेंगे कि इतना छपने के बाद भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं तो इसी पशोपेश में पड़ गया कि बात कहां से शुरू करूँ और कहां खत्म करूँ। मेरा मुंबई आना-जाना बना रहा। १९९५ में एक बार फिर मौक़ा हाथ आया। इलाहाबाद के एक प्रोड्यूसर जो ए. के. मूवीज़ में कैमरा मैन थे उन्होंने शेक्सपियर के नाटकों का १०८ एपीसोड डी. डी.-वन के लिए मंजूर कराया। उसकी शूटिंग म. प्र. के पन्ना के जंगलों में शुरू हुई। पहला नाटक था 'रोमियो जूलियट'। पटकथा, अभिनय और सहयोगी निर्देशन के साथ में फ़ादर का रोल भी कर रहा था। बंबई से पूरी यूनिट लेकर आया था। दो महीने शूटिंग चली। प्रोड्यूसर खान का फ़्लैट भी बिक गया। लेकिन शूटिंग दो महीने बाद बंद हो गयी। जो फ़ायनेन्सर थे, उन्होंने हाथ उठा दिया था। ऐसी घटनाएं कई हैं, जिन्हें यहां उल्लेख कर पाना संभव नहीं है। उसके बाद से जो प्रस्ताव मिले भी तो मैंने मुंह मोड़ लिया।

अरविंद जी ने मेरी कई कहानियों को छपा। 'कथाबिंब' का मैं आभारी हूँ। इस पत्रिका ने मुझे दो-दो पुरस्कार दिये। खासकर २०१२ में 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' पाकर मुझे बेहद प्रसन्नता हुई थी। कमलेश्वर जी से दिल्ली, मुंबई में मुलाकात हुई थी। रीवा भी आये थे। उन्होंने मुझे 'गंगा' में भी छपा था। आज मेरे दो उपन्यास, दो कहानी संग्रह, एक आलोचना ग्रंथ के साथ-साथ २०० से २५० तक कहानियां, लेख, और आलोचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। इस पूरे जीवन को कई-कई बार निराशा के मेघों ने घेरा। लेकिन जो परिवार सदैव मेरे खिलाफ़ था जिसकी उम्मीद में मैं खरा नहीं उतर पाया उसी परिवार ने खासकर पत्नी शांती, पुत्र समिताभ, सौरभ और शुभम जो अपनी दिशा में सही क़दम उठा रहे हैं ने मुझे लेखक बनने में भरपूर मदद

की। मेरी मां तो सदैव मेरे साथ खड़ी रहीं। उसने मुझसे कुछ लिया नहीं सदैव दिया है। आज नब्बे साल से ऊपर हो गयी हैं। मेरे साथ ही रहती हैं। अक्सर मुझसे कहती हैं — "मुन्ना तू लेखक बनेगा।" अब तो बड़े भाई भी खुश हैं लेकिन सबसे ज़्यादा निराशा मेरे पिता को थी। उन्हें बीस साल से ऊपर हो गये स्वर्गवासी हुए। एक क़िताब उनके हाथ में रखने की तमन्ना अधूरी रह गयी।

पिता मुझसे कभी खुश नहीं रहे। लेकिन उनका प्यार और आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा। मैं उनकी उम्मीदों में कभी खरा नहीं उतर पाया। लेकिन एक बात उनकी सदैव याद रखने की है, "जो करो, पूरे मन से करो, अपने लक्ष्य को कभी धूमिल मत होने दो। सफलता एक दिन तुम्हारे पास चलकर आयेगी।" दूसरी बात जिसका अर्थ अब समझ में आता है। "जीवन में उदार बनो। लेने में नहीं देने में विश्वास रखो।" पिता का सूत्र मेरे पूरे परिवार के सदस्यों पर लागू होता है।

साहित्य सृजन में आज भी सेवारत हूँ। लेकिन अफ़सोस यह है कि आज तक समाज को उत्कृष्ट कुछ नहीं दे पाया। हर कलाकार, साहित्यकार अपना बेहतर समाज को देना चाहता है। मैं भी चाहता हूँ कि मेरा पूरा लेखन सोद्देश्य हो। बेहतर से बेहतर साहित्य लिख सकूँ। लेकिन रचना की श्रेष्ठता तो पाठक तय करता है। प्रेमचंद को महान बनाने वाला पाठक ही है। 'कथाबिंब' में एक कहानी 'मंथन' छपी थी। जिसमें मुझे पचास फ़ोन और नब्बे के आसपास एस. एम. एस. आये थे। इसी तरह "वागर्थ" में एक कहानी 'रानी बिटिया' छपी थी। इतने पत्र आये थे, जिन्होंने मेरे उदास मन को प्रफुल्लित कर दिया था। लेकिन आज तक एक भी बड़े साहित्यकार ने मेरी कहानियों का नोटिस नहीं लिया।

बहरहाल कुछ शुभेच्छुओं की वजह से ही मुझ जैसे छोटे लेखक भी मैराथन दौड़ से बाहर नहीं हो पाते। आज भी जब कोई कहानी छपती है, उस खुशी को बयान नहीं कर पाता। तब कान इंतज़ार करने लग जाते हैं कोई कहने वाला है — विवेक जी आपकी कहानी बहुत अच्छी लगी। एक लेखक का इससे बड़ा पुरस्कार भला और क्या हो सकता है।

राजीव मार्ग, निराला नगर,
रीवा (म. प्र.)- ४८६००२
मो. : ९४२४७७०२६६



‘क्रांति विचार से आती है, शब्दों से नहीं !’

✍ डॉ. शांति सुमन

(“डॉ. शांति सुमन हिंदी गीत काव्य की शिखरस्थ पहचान से जुड़ी एक ऐसी विदुषी कवयित्री हैं जिन्होंने सच्चे अर्थों में गीतों को जिया है अथवा कह सकते हैं, जीवन की विविध आयामी सोच के साथ गीतों में समन्वित हुई हैं, गीतों से जुड़ी हैं.” डॉ. विष्णु विराट के उपरोक्त कथन को समर्थन देती डॉ. अशोक प्रियदर्शी की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं. “शांति सुमन गीत लिखती नहीं, गीत उनके हृदय से निकल कर होठों से फूट पड़ते हैं.” ‘ओ प्रतीक्षित’, ‘परछाईं टूटती’, ‘मौसम हुआ कबीर’, ‘पंख-पंख आसमान’, ‘एक सूर्य रोटी पर’ आदि गीत संग्रहों एवं उपन्यास, समीक्षा, आलोचना आदि की प्रखर रचयिता डॉ. शांति सुमन हिंदी गीतों की ‘महा मल्लिका’ मानी जाती हैं. उनका विराट रचना संसार अनंत संभावनाओं का जीवंत आकाश है. मीठे, माधुर्यपूर्ण, गीतों की समर्थ, सशक्त संवेदनशील कवयित्री से ‘कथाबिंब’ के लिए श्रीमती मधु प्रसाद की बातचीत प्रस्तुत है.)

❖ दीदी, वर्षों से आपके सुंदर गीतों की वेगमती धारा में सानंद बहती रही हूँ. कभी ‘नाग केसर की हवा’, धप्पा मार कर भाग जाती है, कभी ‘ओ प्रतीक्षित’ को पुकारता ‘मौसम कबीर’ हुआ जाता है. कभी ‘परछाईं टूटती है’, ‘कभी रिश्ते पसीने’ हुए जाते हैं. आपके ‘धूप रंगे दिनों’ की एक लंबी यात्रा है जो निरंतर तन-मन भिगोती हुई जीवन के हर रूप, हर रंग को उड़ेलती है, खंगालती है, तराशती है और फिर कहती है -

साथ साथ चला किये, समय और हम.

समय की इस यात्रा का आरंभ करूँ तो कहाँ से ? चलिए पहले घर के आंगन में दौड़-पकड़ खेलती हुई, अम्मा के हाथ से गढ़े चूल्हे की सौंधी ख़ुशबू से पगे आपके बचपन के कुछ पृष्ठ खोलें.

मधुजी, आपने बचपन के कुछ पृष्ठ खोलने की बात की है. इस संबंध में कहना चाहती हूँ कि मेरा बचपन किसी निम्न मध्यवर्गीय लड़की की तरह साधारण रूप से, ही प्रारंभ हुआ, किंतु परिस्थितियों ने उसमें कुछ विशेष पृष्ठ जोड़ दिये. मेरा जन्म एक संयुक्त परिवार में हुआ जिसमें तीन चचेरे भाइयों का परिवार एक साथ रहता था. मेरे पिता अकेले भाई थे और अंग्रेज़ी राज में मैट्रिक पास करते ही उनकी डिफ़ेन्स में नौकरी हो गयी थी. मेरा किसान परिवार था. और किसान ही मुख्य पेशा था. मेरे

पिता का कर्म निष्ठ और कर्तव्य निष्ठ होने का बड़ा कठोर स्वभाव था. उन दिनों कंट्रोल का ज़माना था. बाढ़-अकाल और किसी भी प्रकार खेती नष्ट होने पर अन्न और कपड़े कंट्रोल में मिलते थे. मेरे पिता घर में सभी बच्चों को कपड़े देने के बाद ही हमारे लिए कपड़े लाते थे. तब तक मैं घर के सभी बच्चों को नये कपड़ों में देखती रहती थी. मेरी मां स्वभाव से बड़ी सहिष्णु और धर्म परायण थीं. उनका कभी मेरे पिता से विरोध नहीं हुआ. तभी मेरे पिता अपने उस बड़े परिवार को शालीन रूप से चला सके.

मधुजी, मैं बड़े यत्न से पाली-पोसी गयी. मेरे जन्म से पहले मेरी मां ने एक पुत्र को जन्म दिया था. दुर्भाग्यवश वह शिशु छः दिनों बाद जीवित नहीं रहा. घर पर दुख की परत छा गयी थी. तीन वर्षों बाद मेरा जन्म हुआ तो घर में जैसे खुशियों की बाढ़ आ गयी. मेरा आना शुभ माना गया. मेरे बाद मेरी मां को एक एक कर तीन बेटे हुए. इसलिए घर में मेरा कुछ अधिक ही स्नेह, सम्मान था. मां से अधिक मुझको दादी का सान्निध्य, स्नेह और लगाव प्राप्त था. मेरी दादी जब मुझमें संलग्न होती थीं, तो वे किसी अन्य बच्चे के रोने पर ध्यान नहीं देती थीं, मेरी मां ही उसको चुप कराती थीं. दादी की यह संलग्नता मेरे लिए अपूर्व सुख की रचना करती थी. मेरी दादी धार्मिक कहानियां सुनाती थीं — श्रवण कुमार या राजा हरिश्चंद्र. मेरी मां अपने संबंध की किसी लड़की का उदाहरण देकर कहानी सुनाती थीं, जिसमें घर-परिवार की

शालीनता और सामाजिक शिष्टाचार की बातें होतीं.

❖ **आपके बचपन के गलियारे से, धूप भरे यौवन की यात्रा अपने आप में यादों की एक ऐसी गठरिया है जो खुले तो खुलती जाये क्योंकि 'खुशबू चली हवा के घर से' - पिता से पति के घर से मेहदी, हल्दी वाले दिनों की कुछ बातें, जो बांटना चाहें -**

हाई स्कूल तक मैंने पढ़ाई, सुखपुर से की. साधारण किसान परिवार में जन्म लेने के कारण असुविधाएं तो थीं ही, रूढ़ियों के बंधन भी बहुत कड़े थे. गांव में एक तो लड़कियों की शिक्षा का चलन नहीं था. दूसरे, गांव से शहर भेजकर लड़कियों को पढ़ाना असंभव कल्पना थी. इसलिए पारिवारिक सहमति से उच्च शिक्षा के लिए मेरा

विवाह २५ फरवरी १९५९ को संपन्न हुआ. उस परिवार में उच्च शिक्षा के प्रति सद्भाव था. उसी वर्ष मुजफ्फरपुर के लंगरसिंह कॉलेज में मेरा नामांकन हो गया. फिर तो प्री-यूनिवर्सिटी से लेकर एम. ए. तक की पढ़ाई में विश्राम नहीं लिया. मेरे पति मुजफ्फरपुर आ गये. अब घर की जिम्मेदारी और पढ़ाई दोनों का निर्वाह मुझको स्वयं करना पड़ा. यह वह स्थिति थी जब पिता के घर में मैंने चूल्हा/स्टोव जलाना जाना ही नहीं था. तब छोटे शहर में गैस चूल्हा नहीं होता था. मैं नहीं जानती थी कि रोटी कैसे बेली जाती

है, भात कितना उबलने पर पूरा पक जाता है ? वे बड़े कठिन दिन थे. मैंने मजबूत संकल्प और कड़े संघर्ष से उन दिनों का सामना किया. पिता ने मेरी दादी को मेरे पास पहुंचाकर मुझ पर असीम स्नेह की वर्षा की. प्री-यूनिवर्सिटी परीक्षा देने तक मैं अपने पुत्र अरविंद की मां बनी. मैं प्री से लेकर एम. ए. तक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई. फिर मैंने पीएच. डी. की. संघर्ष के कई कथानक बने, बदले. हल्दी, मेहदी वाले दिनों की एक ही फल श्रुति यह है कि मेरा विवाह मेरी पढ़ाई की भूमिका बना था. पति का सहयोग सान्निध्य इतना अपूर्व था कि उसके कारण ही मैं पढ़-लिख सकी. उस जीवन में खुशबू कम मौसम का ताप अधिक था.

❖ **दीदी, आपकी गीत यात्रा गीतात्मक, भावात्मक, रागात्मक एवं समसामयिक संदर्भों की एक विरल यात्रा है जो उस समय से रचनाशील एवं सुस्थापित है जब गीत एवं नवगीत के फलक पर पुरुष कवियों का वर्चस्व था. सर्वप्रथम जानना चाहूंगी**

आपकी काव्य यात्रा कहां से, कब प्रारंभ हुई और गीत विधा को ही आपने अपने अंतर की कोमल, रेशमी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम क्यों चुना?

मधुजी, कुछ संस्कार और कुछ घर-परिवार और आस-पास के वातावरण के कारण मेरे अंतर्मन में संवेदना का विकास हो गया था. सुबह शाम विपन्न घरों की छतों से ऊपर उठते धुएं, पशु पक्षियों से उनके लगाव, घर परिवार की चिंता करते किसान-मजदूर, गांव का हरापन, पान, पोखर, मरवान में चमकती मछलियां, चरवाहे आदि मुझको बहुत आकर्षित करते थे. धान रोपनी करती हुई किसान की बहू-बेटियां मुझको साक्षात् अन्नपूर्णा लगती थीं. इन्हीं परिस्थितियों में आठवें-नवें में पढ़ती हुई मैं कविता लिखने लगी थी. तब यह जान नहीं पाती थी कि कविता है या गीत है. कितनी ही कॉपियां भर गयी थीं रचनाओं से. मैं मैट्रिक में पढ़ते हुए पहले की अपेक्षा अधिक मंजी रचना करने लगी. मेरा पहला गीत श्री तारानंदन 'तरुण' द्वारा संपादित पत्रिका 'रश्मि' में सन १९६० में छपा था.



डॉ. शांति सुमन

मधुजी, आप स्वयं एक सशक्त और मंजी हुई गीत धर्मिता से समन्वित गीतकार हैं. बहुत ही आकर्षक होता है

यह प्रश्न, जब कोई गीतकार से पूछे मैंने गीत विधा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम क्यों चुना. गीत अविरत गति से हमारे जीवन, मनप्राण और सामाजिक सरोकारों से प्रवाहित है. सुख-दुख, राग-विराग सबको यह विकसनशील विधा अपनाती चलती है. जहां जीवन है, गति प्रगति है वहां गीत है. वाणिज्य की इस सदी में भी गीत हमारे अस्तित्व को गति देता है. हमारी संवेदना की नमी को बचाये रखता है. मनुष्यता को बचाये रखने के लिए गीत को बचाये रखना ज़रूरी है. गीत मेरा पहला आकर्षण रहा है. मैंने अन्य अनेक गीतकारों की तरह माधुर्य, सौंदर्य, लालित्य, सौमनस्य चाहे वह आत्मीय हो या सामाजिकता से भरपूर गीत विधा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना. दूसरी बात यह है कि गीत रचना प्रक्रिया सरल नहीं है. कविता की आसान विधा को चुननेवाला इसीलिए गीत से बचता है.

❖ **दी, आप वर्षों से गीत एवं नवगीत की**

शालीन एवं गरिमामय अमिट छाप छोड़नेवाली एक सशक्त कवयित्री के रूप में प्रस्थापित हैं। ऐसे सहज, सरल कविमन में गांव की महक, प्रकृति की चहक एवं वर्तमान संदर्भों से जुड़े गीतों की प्रेरणा बिंब शब्दों का लालित्य सब कुछ कैसे आपको ढूंढ लेते हैं या आप ढूंढ लेती हैं?

यह प्रश्न इतना प्रासंगिक है कि मैं भीतर से प्रसन्न हो गयी। मेरा जन्म गांव में हुआ। गांव की मिट्टी, गोबर लिपे घर, आंगन में खेल कर मैं बड़ी हुई। गांव में छोटे-छोटे फूस के घर, खेत खलिहानों में काम करने वाले लोगों की दिनचर्या, आम की गाछी की हंसी-खुशी, सर्दी-गर्मी झेलते लोग, पेबंद टंके हुए कपड़े पहने हंसते बच्चे, खेतों से घर तक बसी हुई हरियाली, ऋतुओं के आने-जाने की सहजता, छोटी-छोटी खुशी बांटते लोग, संबंधों का अंतहीन सिलसिला — यही सब हैं जो गीत की प्रेरणा बुनते हैं। बिंब, शब्दों का लालित्य सब कुछ उन्हीं से छन कर आता है। गांव का अनलंकृत सौंदर्य किसको नहीं बांध लेता है। मैं कुछ नहीं ढूंढती। मन की भावानुभूतियां जब शब्दों का आवरण पहनती हैं तो मैं प्रकृति को ही आलंबन और उद्दीपन दोनों बनाती हूं।

❖आपकी प्रेरणा के स्रोत कोई विगत या समकालीन साहित्यकार या कोई स्मरणीय प्रसंग या कोई पुस्तक?

मधुजी, रचना में प्रेरणा के स्रोत तो होते हैं, पर मेरी दृष्टि में हम जीवन जीते हैं, जिस रूप में जीते हैं, हमारा संघर्ष, हमारे अपने सुखांत-दुखांत अनुभव और जीवन के प्रति हमारी दृष्टि ही प्रेरणा स्रोत होते हैं। जीवन के अंतर्विरोध, सामाजिक परिस्थितियों से अलग कोई प्रेरणा स्रोत क्या होगा ? वस्तुतः हमारा जीवन ही खुली किताब हो रहा है। वहीं से हम प्रेरणा ग्रहण करें तो बेहतर है।

❖गार्हस्थिक एवं विद्यालीय व्यस्तताएं अवरोध तो उत्पन्न करती हैं किंतु रचनाकार की गति को रोक नहीं पातीं। कैसे सब कुछ गतिमान रखा आपने ?

मधुजी, आपने अनुभव किया होगा कि संघर्ष जितने तेज होते हैं, रचनाशीलता उतनी गतिशील होती है। वस्तुतः जीवन के झंझावात ही हमें पालते हैं। संघर्ष के बिना कोई रचनाशील हो ही नहीं सकता। मैं कॉलेज में प्राध्यापिका से विभागाध्यक्ष के पद तक गयी। कवि

सम्मेलनों में मैं कभी-कभी महीने में तीन-तीन काव्य मंचों पर जाती थी। सामाजिक, पारिवारिक औपचारिकताएं भी अलग से थीं। मेरे पति ने मेरा बहुत साथ दिया। उन्हीं के अवलंब से मैं इतना कुछ कर सकी। गार्हस्थिक एवं विद्यालीय व्यस्तताओं के अवरोधों में कहीं न कहीं रचनात्मकता भी होती थी। व्यस्तताएं एवं अवरोध और बाधाएं आत्मबल भी देते हैं। पहाड़ से उतरती वेगमती नदी का पथ पत्थर और कुश-कंटक नहीं रोक लेते।

❖आज एकाध पुस्तक या कुछ गीतों की रचना के बाद से ही एक दौड़-सी लगी है गीतों की दुनिया में, स्वयं को श्रेष्ठ मान लेने या समझने की। इस तीव्र गति (शायद यह नूतन पीढ़ी की अनेक विशेषताओं में एक हो) को आप क्या कहेंगी – यानी इंस्टैंट पॉपुलैरिटी?

महत्वाकांक्षा बुरी नहीं है, यदि सामर्थ्य है। सपने देखना भी बुरा नहीं है, यदि उसको बचाकर रखने का हौसला हो। समाज के हर क्षेत्र में नवीन पीढ़ी एक उतावलापन जी रही है। लगता है उसके पास समय नहीं है। वह कम समय में ही सफलता की सीढ़ियां चढ़ लेना चाहती है। वैसे आकाश को नाप लेना कठिन नहीं है यदि पंख में ऊर्जा हो। नयी पीढ़ी में सभी इस शीघ्रता से ग्रस्त नहीं हैं। वे जानते हैं कि सरलता से मिली आज़ादी जब स्थिर नहीं रह सकती तो आपाधापी में मिली लोकप्रियता कैसे स्थायी हो सकती है। गीत-लेखन सृजन साधना है। इसका श्रेष्ठ तो आगे की रचना में ही व्यक्त होता है। इसलिए एक पुस्तक या कुछ गीतों का लिखना श्रेष्ठता का प्रतिमान कैसे हो सकता है ? हमारे लेखन के उत्कर्ष पर ही हमारा श्रेष्ठ व्यक्त होगा।

❖दीदी, गीतों में गहनता, भावात्मक, रागात्मक उत्कर्ष हो, चिंतन, मनन एवं एक जीवन दर्शन हो – युवा पीढ़ी को अभिव्यक्ति की सहजता, सरलता एवं शब्द साधना हेतु क्या करना चाहिए ?

सुनिए मधुजी, मैं इस बात में विश्वास नहीं करती कि युवा पीढ़ी को किसी सुझाव या सलाह की आवश्यकता है। युवा पीढ़ी अत्यंत सजग और सतर्क है। आज पत्रकारिता, मीडिया और इंटरनेट के जितने प्रलोभन और भूमंडलीकरण जिसने पूरी दुनिया को एक मंडी में बदल दिया है के अनेकानेक दवाबों को झेलती हुई युवा पीढ़ी स्वयं अपना रास्ता बना रही है। कुछ प्रतिशत युवा जो जीवन को बाज़ार की तरह जीते हैं उनकी सोच, खान पान, वस्त्र-भूषा, भाषा,

बोलचाल के ढंग, आचार-विचार सब भिन्न हैं। उनके जीवन मूल्य में कोई कमी है। इस प्रतिशत से अलग और ऊपर जो युवा हैं उनकी सोच सकारात्मक है। उनकी दृष्टि में आगामी समय की सारी संभावनाएं जुड़ी हैं। युवा पीढ़ी जन संपृक्ति में विश्वास करे इससे ही उसके जीवनानुभव बढ़ेंगे। इसी से उसको अभिव्यक्ति की सहजता और सरलता प्राप्त होगी और उसकी शब्द साधना को सामाजिक परिणति मिलेगी।

❖ आप वर्षों से शब्द साधना कर रही हैं। साहित्य की अन्य विधाओं – उपन्यास आदि पर भी आपने लेखनी चलायी है। आपका सर्वाधिक प्रिय उपन्यास या कहानी जिसने आपके मन पर गहरा प्रभाव डाला हो! क्या कहना चाहेंगी अपने 'धूप रंगे दिन', 'पंख पंख आसमान' पर उड़ते दिनों के 'भीतर भीतर आग' सेकते सृजनात्मक क्षणों के बारे में ?

मेरे सृजनात्मक क्षणों का धरातल बड़ा है। मैंने गीत के अतिरिक्त उपन्यास, समीक्षा और आलोचना भी लिखी तो उसके पीछे गीत का विस्तार ही है। मैंने गीत संग्रहों की ही समीक्षाएं लिखी हैं। मेरा उपन्यास 'जल झुका हिरन' विश्वविद्यालयीय राजनीति में सांस लेते तीन युवाओं की अपरिमित अनंत प्रेम यात्राओं के कुछ अंश हैं। कई समीक्षकों और आलोचकों ने मेरे उपन्यास को भी गीतात्मक माना। उपन्यास को गीत कहना अच्छी प्रतिक्रिया नहीं है, पर मुझको अच्छा लगा। विशेषकर इस उपन्यास की भाषा उनको गीतात्मक लगी। यह मेरा उपन्यास मुझको प्रिय है। मैंने गीत को ही जिया है और मेरे अंतर्मन में उसकी उपस्थिति सदैव रहती है। 'ओ प्रतीक्षित' से लेकर 'परछाई टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'भीतर भीतर आग', 'एक सूर्य रोटी पर', 'तप रहे कचनार', 'धूप रंगे दिन', 'पंख पंख आसमान', 'मेघ इंद्रनील' (मैथिली गीत संग्रह), 'नाग केसर हवा' और 'लय हरेपन की' केवल गीत संग्रह नहीं हैं, मेरी भावानुभूतियों, जीवनानुभवों, संवेदनाओं, संघर्षों और जीवन राग के जीवित गीत वर्ष हैं। ये मेरे गीतात्मक जीवन के पड़ाव हैं। ये मेरी यात्रा में आये सुख, दुखों के चिन्ह लगे पृष्ठ हैं।

जब मैं जीवन से आत्मीय बनी रही तो नवगीत की रचना की। जब सामाजिक संघर्ष, जीवन यथार्थ और व्याख्या के दो पाटों में पिसती हुई जनता से जुड़ी तो जनवादी गीत की रचना की। क्रांति विचार से आती है शब्दों से नहीं। गीत में विचारों को सायास जोड़ने में भी मैं विश्वास नहीं करती।

गीत में विचार रहें, विचार में गीत रहने लगे, ऐसा नहीं होना चाहिए।

❖ आज के परिप्रेक्ष्य में लिखे जा रहे गीत, नवगीत के विषय में आपके विचार जानने को उत्सुक हूं।

गीत चिरंतन है। यह एक विकसनशील विधा है। यह आदि काल से लिखा जा रहा है और बदलते समय, बदलती परिस्थितियों के साथ अपनी प्रवृत्तियों को विकसित करते हुए निरंतर आगामी बनता रहा है। कोई भी कला, संस्कृति सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप जन्म लेती है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था में परिलक्षित होने वाली परिस्थितियों का प्रतिबिंब उसमें होता है। निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'जूही की कली' जैसी रचनाएं हों या उमाकांत मालवीय, रमेश रंजक, माहेश्वर तिवारी, नरेश सक्सेना, नचिकेता आदि के गीतों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। गीत छंदबद्ध होने के कारण जनता के अधिक समीप होता है। वह जनता के जीवन को आंदोलित और संजीवित करता है। छंद में रचने के कारण आज भी कबीर, तुलसी आदि जनता के प्रिय कवि, गीतकार हैं।

नवगीत में शिल्प के स्तर पर पहले के गीतों से बदलाव देखा जा सकता है। प्राचीन छंदों की जगह गीतकारों ने नये-नये छंदों का सृजन किया। १९६० के बाद से गीतकारों ने नवगीत ही लिखा। नवगीत की ज़मीन पक कर तैयार हो गयी थी। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। गीत के विरोधी अब चुप हो गये हैं। वस्तुतः नवगीत संग्रह अपेक्षाकृत अधिक छप कर आ रहे हैं। समय की संवेदना को पहचानने की क्षमता नवगीत में अपूर्व है। समय और साहित्य की धार को तेज़ करने के लिए ऐसे नवगीतकारों की भूमिका वरिष्ठ है। इनके नवगीत समय से सार्थक संवाद हैं।

❖ आज के बदलते दृश्य, संदर्भ, विषमताएं, विद्रूपताएं सब कुछ गीत में समाहित हो रहे हैं। फिर भी गीत वही जो अंतर्मन में देर तक, दूर तक गुंजता रहे – समकालीन मात्र न होकर सर्वकालीन हो। 'मैं नीर भरी दुख की बदली, उमड़ी कल थी, मिट आज चली।' क्या कहेंगी इस अभिमत के बारे में ?

इस प्रश्न में आपकी दृष्टि बहुआयामी हो गयी है। मैं पहले इस प्रश्न के उत्तर भाग को ही स्पष्ट करना चाहूंगी। महादेवी जी से मैं आत्मीय रूप से जुड़ी थी।

व्यक्तिगत संबंध मेरा भले सघन था, पर उनकी गीत दृष्टि से मेरी सहमति कभी नहीं हुई. अपने जीवन में वे जितनी बहिर्मुख और सामाजिक थीं, अपने गीतों में उतनी ही वैयक्तिक और अंतर्मुखी रहीं. अपने जीवन में वे जेल गयीं. स्वतंत्रता संग्राम में रुचि ली, खादी पहनी. उनके सामाजिक सरोकार सघन थे. पर उनके गीत अनाम रहस्य और दर्शन के इंद्रजाल से बाहर नहीं निकले. क्षणवाद और दुखवाद के जिस दर्शन को आपके द्वारा उद्धृत महादेवी जी की गीत-पंक्तियां दर्शाती हैं, वे समकालीन जीवन-यथार्थ और सामाजिक रुझान से मेल नहीं खातीं. आज ऐसे गीतों को लिखने का अर्थ समाज-सापेक्ष नहीं होगा.

आप जैसा कह रही हैं 'गीत वही जो अंतर्मन में देर तक, दूर तक गूँजे' तो ऐसे गीत भी नवगीत के पृष्ठों पर अधिकाधिक संख्या में मिलेंगे. नवगीत में प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य के विभिन्न राग संदर्भों से जोड़ कर लिखा गया है. बांसुरी की सुरिली धुन की तरह प्रेम और सौंदर्य इन गीतों में बजते हैं. ऐसे गीतों के अनुभावन के लिए 'रात आंख मूंदकर जगी' (राजेंद्र प्रसाद सिंह), 'मेंहदी और महावर' (उमाकांत मालवीय), 'कोई हर सिंगार तो हो' (माहेश्वर तिवारी), 'परछाई टूटती (शांति सुमन) आदि संग्रहों के गीत पढ़ने चाहिए जहां ये गीत देर तक दूर तक, अंतर्मन में गूँजते रहते हैं. और भी पढ़ें 'सपने शैवाल के' (मधुसुदन साहा), 'जैसे धूप हंसती है' (यशोधरा राठौर) आदि.

❖ **चलते-चलते... जिनके बिना गीत / नवगीत की चर्चा की कल्पना असंभव है, अनेक पुरस्कारों से सम्मानित, भाषा एवं साहित्य की वरिष्ठ एवं विशिष्ट रचनाकार एक सफल प्राध्यापिका, गृहणी, नानी, दादी की सहजता, सरलता कैसे बनी रही – इस शोर शराबे, चमक-दमक एवं मिथ्या मान – अभिमान के इस नकली वातावरण में – यह गुण वरेण्य है, स्तुतीय एवं अनुकरणीय है.**

कहां से कितना कहां मधुजी, कुछ तो वातावरण बनता, बना रहता है, कुछ को बनाया भी जाता है. मैं विवाह के बाद से उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर हुई. उन दिनों काव्य मंचों के अनेक आमंत्रणों में मुझको बिहार से मद्रास, असम, बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, उड़ीसा और दिल्ली के अगणित स्थानों पर कार्यक्रम में जाना होता था. इसमें मेरे पति का अनन्य

सहयोग प्राप्त था. मेरे पति ने सदैव मुझको पढ़ने-लिखने विशेषकर गीत लिखने के लिए प्रेरित और उत्साहित किया.

जब दादी-नानी बनने की मेरी भूमिका हुई तब मैं कॉलेज में पढ़ा ही रही थी. मेरा समय साहित्य पढ़ने और गीत की रचना में ही अधिकाधिक बीतता रहा है. इसलिए अच्छा भोजन बनाने और घर को नयी रीति से सजाने के काम में मैं निपुण नहीं हूँ. मेरे घर परिवार ने मुझको भीतर से भरा-पूरा बनाया है. मुझको पारिवारिक आत्मीयता से बहुत ऊर्जा मिलती है. मेरे बारे में सभी जानते हैं कि स्वभाव से मैं बहुत शांत और साधारण हूँ. मंच पर जितना बोल लेती हूँ उसका आधा भी घर में नहीं बोल पाती. शुरू से ही सहज सरल रही हूँ. वैसे भी छोटे शहर में पश्चिम की हवा तब बहुत नहीं आती थी. मिथ्या मान-अभिमान की मैं शुरू से विरोधी रही हूँ. शोर-शराबे, चमक-दमक का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ता.

वैसे तो मैं एक साधारण स्त्री और साधारण गीतकार हूँ पर जब आप जैसी संवेदनशील सामाजिक सरोकार से युक्त गीतकार मुझको अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों के साथ भाषा एवं साहित्य की वरिष्ठ एवं विशिष्ट रचनाकार मानती हैं तो एक सफल प्राध्यापिका, गृहणी, दादी-नानी की सहजता सरलता देखती हैं तो मुझको स्वयं को पहचानने का अवसर मिलता है.

गीत रचना क्रम में मुझको पहली खुशी तब मिली थी जब महान गीतकार उमाकांत मालवीय जी ने मुझको 'नवगीत की एक मात्र कवयित्री' कह कर मेरी रचनात्मकता पर मुहर लगायी थी. दूसरी खुशी आज मिल रही है जब आपने मेरी गीत धर्मिता को पहचान कर मेरे साधारण व्यक्तित्व में इतने अलंकृत विशेषणों को भर दिया है.

मैं आपके ही शब्दों को लेकर आपके इस प्रश्न के उत्तर भाग को देख रही हूँ. युवा पीढ़ी को यही दिशा निर्देश दे रही हूँ कि ये शोर-शराबे, चमक-दमक बहुत नकली हैं. ये हमें सिर्फ भटकाते हैं. मैं कोई उपदेश नहीं देती. कहना चाहती हूँ कि हर बड़ी चीज की तरह वसंत की शुरुआत भी बहुत साधारण और सरल होती है. बाद में ही उसका धरातल, उसका क्षितिज व्यापक होता है. हम नहीं जानते कि हम सबमें संभावनाओं के कितने बीज सांस लेते हैं. असली मेधा भीतर में होती है. बाहर नहीं झांकती. आज जीवन के हर क्षेत्र में साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय यहां

(शेष पृष्ठ ४७ पर...)



भारतीय रंगमंच की महानायिका

: सुधा शिवपुरी

✍ सविता बजाज

पाठक मित्रों, मैं जब साठ और सत्तर के दशक के आस-पास कला के क्षेत्र में आयी, उन दिनों अच्छे परिवार की लड़कियों का कलाकार बनना बुरा समझा जाता था. मेरे परिवार में सब ऊंची-ऊंची पढ़ाई कर रहे थे — डॉक्टर, वकील, सी. ए., वैज्ञानिक, इंजीनियर वगैरह बनने की. सविता बावरी का मन पढ़ाई में ज्यादा न लगता. बल्कि, गाना-बजाना, नृत्य, पेंटिंग, नाटक, लेखन में मन रमता. हमारे परिवार में दूर तक कोई कलाकार न था. उन दिनों मैं 'सुधा शिवपुरी' नामक रंगमंच की सुविख्यात अदाकारा की दीवानी थी. मैं जब रेडियो प्रोग्राम करती तो वे भी वहां ओम शिवपुरी नामक महान स्टेज़ एक्टर के साथ आतीं तो मैं बस उस प्यारे से जोड़े को देखती रह जाती. दोनों में अपार प्रेम था. सुधा जी तो खरे, सुनहरे सोने के गहनों से लदी होतीं. दोनों जयपुर से दिल्ली एन. एस. डी. में काम करने आये थे.

मेरा नसीब अच्छा था मैं एन. एस. डी. में चुन ली गयी. फिर मानो कला के सारे दरवाजे अपने आप खुलते गये. सुधा शिवपुरी एक बहुत ही समझदार, अच्छी और सशक्त अभिनेत्री हैं. उनकी छत्रछाया में मेरा अभिनय दमकने लगा. नाटकों के छोटे-छोटे पात्र सजीव होने लगे. सारे टीचर्स मेरे काम से बहुत खुश थे. वहां के डायरेक्टर श्री अब्राहम अल्काजी मुझसे बहुत मेहनत करवाते लेकिन मैं समझ नहीं पाती थी कि मुझे मुख्य पात्र क्यों नहीं दिये जाते थे?

सुधा जी के लिए सब सहज था. वे मेरी टीचर थीं. ओम जी के साथ अभिनय और भाषा, ध्वनि की क्लास लेतीं. सुधा जी के लिए भाषा और व्याकरण की मूल ध्वनि को पकड़ना और फिर उन्हें साहित्यिक नाटकों के शुद्ध और भावानुसार उच्चारण करना देखने लायक था. उनमें अभिनय की किरणें अपने आप फूटती थीं.

जब अल्काजी जी ने मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' मंचित किया तो पेड़, पौधे (नाट्य भूमि) के मध्य मल्लिका का सच्चा परिवेश किया. सुधा जी ने उस पात्र में जान डाल दी. वह सचमुच मल्लिका के पात्र को जी रही थीं. नाटक ने कल्पनाशील होते हुए भी यथार्थ का रूप लिया. मैंने वह नाटक देखा था. और बहुत दिनों तक जार-जार रोयी थी. कई दिनों तक खाना भी नहीं खाया गया. उन्होंने मल्लिका के टूटे दिल की आवाज़ को बांसुरी के सुर में मानों पिरो दिया था. सुधा जी 'कसौटी' नहीं 'पारस' हैं. जिस पात्र को छू लिया, वही जलतरंग की तरह झनझना उठा. भारतीय रंगमंच की ऐसी कोई सशक्त अभिनेत्री नहीं, तभी तो मैं सुधा जी की दीवानी हूं.

सुधा जी, पात्र को सजीव बनाने के लिए बहुत भटकती थीं. मुझमें भी यह गुण सुधा जी की वजह से आया. सच्चे रंगकर्म से जुड़ी सुधाजी हर पात्र की ध्वनि को पहचानती हैं लेकिन एकाग्रता किसी क्रीमत पर भंग न हो इस बात के लिए अनुशासन में रहतीं. क्योंकि बिना एकाग्रता देह, मन, प्राण, आत्मा के बंद द्वार खोल नहीं सकतीं. यह गुरु मंत्र मुझे सुधा जी ने ही सिखाया जिसका उपयोग मैं अपनी हर कला में करती हूं.

नाटक में यदि एक पात्र भी अनुपस्थित होता है या किसी तरह की असंगति बताता है तो सारे नाटक का ढांचा चरमरा जाता है. यह धड़कन के रुकने की तरह है. बस, मेरे जीवन में एन. एस. डी. में रहते यह बात वरदान साबित हुई. छोटे-छोटे पात्रों को सजीव बनाते-बनाते खीज होती थी और मन मसोस का रह जाती. सोचती कभी तो मेरा समय





सुधा शिवपुरी

जन्म : १४ जुलाई १९३७, इंदौर (म. प्र.),

राजस्थान में पत्नी-बहू, जब आठवीं कक्षा में थीं तब ही से कैरियर की शुरुआत करनी पड़ी. पिता की मृत्यु हो गयी थी और मां बीमार रहती थीं. परिवार का पूरा भार आपके कंधों पर आ गया.

१९६८ में आपका विवाह ओम शिवपुरी जी से हो गया. शीघ्र ही, दोनों ने 'दिशांतर' नाम का एक थियेटर ग्रुप गठित किया. कई चर्चित नाटकों, यथा —

'आधे-अधूरे', 'तुगलक', 'खामोश! अदालत जारी है' का मंचन किया.

१९७४ में पति के साथ, फिल्मों में काम करने के लिए मुंबई आ गयीं. कुछ फिल्मों के नाम हैं : 'इंसाफ का तराजू', 'हमारी बहू अलका', 'सावन को आने दो', 'सुन मेरी लैला', 'बर्निंग ट्रेन' आदि. बाद में टी. वी. सीरियल करने लगीं.

यथा — 'रिश्ते', 'सरहदें', 'बंधन' आदि. सीरियल 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' (२०००-२००८) में 'बा' की भूमिका करने पर आपकी पहचान घर-घर स्थापित हो गयी.

अनेक सम्मानों व पुरस्कारों से अलंकृत.

भी आयेगा.

'लहरों के राजहंस' स्व. मोहन राकेश के लिखे नाटक का मंचन होना था. खूब रिहर्सल हो रहे थे. अल्काजी साहब रिहर्सल लेते. ड्रामा के निर्देशक ओमजी थे. मैं प्ले में छोटा-सा पात्र निभा रही थी. एक दिन रिहर्सल में अलका के पात्र को निभाने वाली शोभना नामक लड़की नहीं आयी तो दादा ओम शिवपुरी और सुधा शिवपुरी ने मुझसे वह पात्र करने को कहा. मुझे अलका का पात्र तोते जैसा याद था. मैंने वह पात्र अपने ढंग से किया. हाल में खामोशी छा गयी. सोचा, शायद कोई गलती हो गयी मुझसे. रिहर्सल खत्म हो गया. रातभर सो नहीं सकी, नींद नहीं आयी. सिर में दर्द हो गया तो मां ने लंबे बालों में ढेर सारा तेल डाल दिया.

दूसरे दिन डरते-डरते स्कूल गयी तो पता चला शाम को प्रेस शो सविता बजाज करेगी. कपड़ों की फिटिंग की गयी. बालों का तेल धोया गया और उन्हें अंजता स्टाइल में एक नामी हेयर ड्रेसर ने संवारा. मेरे लिए जैसे वह दिन एक सपने के सच होने जैसा था. मन ही मन अपने संवाद याद कर रही थी और शरीर मानो शिथिल हो रहा था. मेरी एक सहपाठी जो मराठी थी, मुझसे बहुत ईर्ष्या करती थी. नाटक शुरू होने के आधा घंटा पहले मुझे जली-कटी सुना गयी. तो मैं ज़ोर-ज़ोर रो दी. मेरी आंखों का मेकअप धुलकर गालों पर जम गया. शिवपुरी दादा को पता चला तो मुझे

प्यार से समझाया, वह भी नाटक में मुख्य पात्र निभा रहे थे. बेटा यह शुरुआत है. आगे-आगे देखो, क्या होता है. मुझे सहपाठी द्वारा रुलाना मेरे रोल में काम आया. पहली एंट्री ही ऐसी थी. क्योंकि प्रेस शो बहुत ही स्वाभाविक और बढ़िया हुआ. सर अल्काजी के मैंने पांव छुये तो उन्होंने बहुत स्नेह से मुझे गले लगाया. वह दिन मेरी जिंदगी का सबसे अमूल्य, अविस्मरणीय दिन था.

अगले दिन दिल्ली के सब अखबारों में मेरे काम की चर्चा और फोटो छपे थे. उसके बाद मैंने कभी मुड़कर नहीं देखा. यह सारा श्रेय सिर्फ और सिर्फ सुधा और ओम शिवपुरी जी को जाता है. जिसकी वजह से सविता बजाज को नाम और ख्याति मिली, दिल्ली के रंगमंच पर.

मेरी पहली आर्ट फिल्म 'उसकी रोटी' जिसे स्व. मणी कौल ने निर्देशित किया. सहनायिका के पात्र के लिए भी दादा और सुधा जी ने डायरेक्टर को मेरा नाम सुझाया. दादा उन दिनों बंबई में काफ़ी फिल्मों कर रहे थे. उनकी गुलज़ार साहब की 'कोशिश' जिसमें उन्होंने अंधे की भूमिका की थी, बहुत चर्चित हुई थी. सुधा जी जैसी अभिनेत्री की जितनी तारीफ़ करूँ कम है. 'आषाढ़ का एक दिन' में मल्लिका के पात्र को सजीव बनाने के लिए आप जी तोड़ मेहनत करती थीं. दिल्ली में दिसंबर के महीनों में बहुत सर्दी होती है. पूरा स्टेज पानी-पानी तो होता ही था,

इनके लंबे काले ज़मीन को छूते बालों को भिगो दिया जाता था. आषाढ़ की जैसी वर्षा की जाती. मैंने भारतीय रंगमंच के इतिहास में सुधा शिवपुरी जैसी सच्ची, श्रेष्ठ अभिनेत्री को आज तक न पढ़ा, न देखा. मल्लिका ने मुझे महीनों रुलाया. सच पूछो तो मैं इनके पीछे-पीछे चलने की कोशिश करती थी, अभिनय में इनकी परछाई बनना चाहती थी.

इस बहुमुखी प्रतिभा के लिए कुछ भी तो मुश्किल न था. बोलती तो ऐसी मीठी वाणी मानो कहीं बांसुरी में से छनकर ध्वनि निकल रही हो. नये सुर दूँढ़ रही हो बांसुरी. इनके पति ओम शिवपुरी रंगमंच के असली शहंशाह थे. दोनों जब अभिनय करते तो लगता मानो आकाश से कला की पुष्प वर्षा हो रही है.

‘लहरों के राजहंस’ में मैं दोनों का करिश्मा देख चुकी हूँ. बंबई में सुधा जी ने न ज़्यादा फ़िल्में कीं और न रेडियो और टीवी पर आयीं. घर बार संभालती रहीं. बेटी रितु कुछ एक फ़िल्मों में दिखी लेकिन उसने भी जल्द ही घर संसार बसा लिया. बेटा फ़िल्म इंडस्ट्री में ही कुछ टेक्निकल काम करता रहता है.

सुधा जी अपने जीवन से बहुत ख़ुश थीं, सब ठीक था लेकिन एक दिन अनहोनी हुई. दादा शिवपुरी मद्रास गये थे शूटिंग के लिए, ज़िंदा लौटे नहीं. सुधा जी के लिए जीवन संभालना मुश्किल हो गया. लेकिन हिम्मत नहीं हारी. पाली हिल वाला घर जहां दादा के साथ की यादों का अंबार लगा था, छोड़ दिया और धीरे-धीरे सात बंगला के एक छोटे घर में शिफ़्ट हो गयीं. जीवन को चलाने की बात थी, लिहाजा हिम्मत कर घर से निकलीं और सीरियलों में काम मिलने लगा. बालाजी का सीरियल ‘सास भी कभी बहू थी’ ने कामयाबी के झंडे गाड़े, ‘बा’ के रूप में पूरे विश्व में विख्यात हो गयीं.

दादा जब तक ज़िंदा थे किसी न किसी बहाने मेरा मिलना हो जाता था लेकिन उनके गुज़र जाने के बाद अंतराल ज़्यादा हो गया.

‘पिंजर’ फ़िल्म में मेरे साथ सुधा जी थीं, मालूम न था. सीन खत्म करके सुधा जी के पीछे कुर्सी पर बैठ गयी तो आप बोलीं — अरे, सवि दूर क्यों बैठी हो, आओ न मेरे करीब बैठो. पास जाकर उनके पांव छुये तो रोना आ गया — क्या हुआ, वह बोलीं. — कुछ नहीं, दादा की याद आ गयी. अक्सर कहते थे सविता, बावरी है, पागल

आर. पी. शर्मा ‘महर्षि’ पुरस्कृत

हिंदी और उर्दू ग़ज़ल क्षेत्र के जाने-माने वरिष्ठ हस्ताक्षर, आर. पी. शर्मा ‘महर्षि’ को ‘महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी’ ने वर्ष २०१३ के लिए ‘साने गुरुजी एकता पुरस्कार’ देकर सम्मानित किया.

‘महर्षि द्वारा उर्दू छंद-शास्त्र (इल्मे-अरूज़) का सर्वप्रथम सन् १९८४ में हिंदी में सरलतम मौलिक रूपांतरण किया गया. ताकि हिंदी भाषी ग़ज़लकर भी सही छंदोबद्ध ग़ज़ल कह सकें. ग़ज़ल विधा पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथा स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में धारावाहिक लेख भी प्रकाशित होते आ रहे हैं जिनकी उपादेयता को स्वीकारा और सराहा गया है. पिंगल पर भी उन्होंने ‘व्यावहारिक छंद-शास्त्र’ की रचना की है.

- संपादक

है, कला की दीवानी है. सुधा जी ने मेरे सिर पर स्नेह भरा हाथ रख दिया बोलीं — क्या करूं, मुझे भी ओमजी की बहुत याद आती है. मैं, जब तुम्हारे साथ नाटक ‘ट्रोज़न वीमन’ कर रही थी न तब भरी गर्मी में कंबल के लंबे-लंबे चोंगे पहनने पड़ते थे. मेरे लंबे बालों को सफ़ेद किया जाता तो ओम जी ख़ूब हंसते और कहते सुधा तू यह रोल करते-करते पागल हो जायेगी. सुधा जी ज़ोर से हंस दीं, फिर अचानक चुप हो गयीं. अपने को संभाल लिया. धीरे-धीरे बोलीं — उनके बिना जीवन-जीवन की रौनक... सहसा आप चुप हो गयीं.

सुधा जी की आंखों में आंसू तैर रहे थे और नज़रें दूर कहीं कुछ खोज-सी रही थीं.

☎ पो. बॉक्स-१९७४३,
जयराज नगर, बोरिवली (प.),
मुंबई-४०००९२
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

‘कथाबिंब’ का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक



स्त्री की जीत

✍ उर्मि कृष्ण

वे अपनी पत्नी से तंग आकर घर छोड़ बैठे. जगह-जगह भटकते रहे. बस भगवा पहनकर नहीं बैठे. स्त्री के प्रति उनके मन में सम्मान न रहा हो यह बात भी नहीं थी, फिर भी वे उसकी छाया से दूर ही रहना चाहते थे. कहीं भी कोठरी या झोपड़ी में पड़े रहते. पर गृहस्थी से समझौता नहीं कर सके. कभी किसी सदगृहस्थ मित्र के यहां कुछ देर टिक भी जाते तो मन पछताने से बाज नहीं आता. वे फिर अपने को समझाते कहीं और चल देते – काश! मुझे भी कोई मन माफिक मिल जाती? प्रेरणा बनती यह तो मैंने कभी चाहा भी नहीं था. पर कभी हारी-बीमारी में एक कप चाय की आशा तो रखता था. छोड़ो सब. खुद चाय बनाओ, बर्तन मांजो. सिर झटक, साथ ही स्त्री का मोह झटक दिया सदा के लिए.

पर यह स्त्री तो बड़ी जालिम है. आधी दुनिया पर कब्जा किये बैठी है. भटकते, अनियमित जीवन बिताते बीमार तो पड़ना ही था. ऐसे पड़े कि सिरहाने रखा पानी भी नहीं पी सके.

नुककड़ पर चाय का ठेला लगानेवाली लंगड़ी रात ठेला उठा कर जाने लगी तो उनके दरवाजे पर रुक गयी – दस पंद्रह दिन से बाबू चाय पीने नहीं आया? मेरे तो बीस रुपये भी उधार हैं. उसने दरवाजा धकियाया तो बाबू को अधमरा-सा पड़ा पाया. उस समय तो दो घूंट पानी पिलाया. फिर बचे दूध को घर ले जा रही थी. उसे ठेले से लायी, दो-तीन घूंट बीमार के मुंह में डालकर जरा सा पास रख गयी – और पी लेना बाबू कह कर चली गयी.

दूसरे दिन सुबह कोई और स्त्री सफ़ेद कपड़ों में लिपटी आयी. उसने परिचय दिया – मैं चाय वाली के पास रहती हूँ. एक अस्पताल में काम करती हूँ और बिना संकोच के उसने बाबू की सेवा करना शुरू कर दी. अशक्त अधमरे पड़े उस व्यक्ति का बोल नहीं फूटा केवल एक बार उस स्त्री को देख भर लिया. ठीक होने पर उसने जाना कि वह स्त्री

बरसों से अकेली एक अस्पताल से मिले कमरे में रहती है. इस रास्ते से रोज़ निकलती है. चायवाली से चाय पीती है और सुख-दुःख बांटती है. एक दिन उस स्त्री ने सहज भाव से कहा – मिस्टर मैं यह शहर छोड़कर कल जा रही हूँ. नमस्ते.

नीरद ने उसके दोनों जुड़े हाथ पकड़ लिये – काश! मैं तुम्हें रोक सकता.

अब उसकी आंखें रोज़ शाम पांच बजे सड़क पर दूर तक देखती रहती हैं.

✉ ए-४७, शास्त्री कॉलोनी, अंबाला
छावनी-१३३००१ (हरियाणा),
मो. : ९८९६०७७३१७

‘सागर-सीपी’ ... (पृष्ठ ४३ से...)

तक कि आजीविका में भी अनुकरण हो रहा है. युवा पीढ़ी आत्मनिर्भर होकर अपने व्यक्तित्व के तेज़ को बचा लेगी जिस तरह धरती नमी बचाती और आकाश जल.

❖ दीदी, आपसे बात करके परम आनंद एवं अनंत संतोष की अनुभूति हो रही है जिसकी व्याख्या कठिन है. आपकी ही इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा ले रही हूँ –

कुछ देर यों ही आस-पास हो लें
मन है, आकाश हो लें ।

✉ १, कैज़र बंगलो, कपाली रोड,
कदमा, जमशेदपुर-८३१००५ (झारखंड).
मो. ९४३०९१७३५६.

श्रीमती मधु प्रसाद
२९, गोकुल धाम सोसायटी,
कलोल-महसाणा राजपथ,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४
मो. : ९५५८४२४७८८.



कहां ले जायेगी यह कट्टरता ?

✍ तस्लीमा नसरीन

बांग्लादेश के पूर्व डाक और दूरसंचार मंत्री अब्दुल लतीफ़ सिद्दीकी ने पिछले दिनों कहा कि वह हज़ और तबलीगी जमात के विरोधी हैं। इस तरह की टिप्पणी के बाद स्वाभाविक ही उनका मंत्री पद चला गया है। उनके खिलाफ़ बांग्लादेश की सड़कों पर कट्टरवादियों के जुलूस निकले हैं। उनकी फांसी की मांग की गयी है, और उनका सिर क्रलम करने की क्रीमत पांच लाख टका रखी गयी है। सिद्दीकी की लानत-मलामत करने में बांग्लादेश की राजनीतिक पार्टियां भी पीछे नहीं हैं। वे कह रही हैं कि लतीफ़ सिद्दीकी को बांग्लादेश में घुसने नहीं दिया जायेगा। वहां का मीडिया भी उन्हें निशाना बना रहा है।

बांग्लादेश की नब्बे फ़ीसदी आबादी मुस्लिम है। इनमें से ज़्यादातर का मानना है कि लतीफ़ सिद्दीकी ने मुसलमानों की धार्मिक भावना को चोट पहुंचायी है। किसी व्यक्ति को ऐसी टिप्पणी नहीं करनी चाहिए थी, जिससे किसी की भावनाओं को चोट पहुंचे। मंत्री पद पर होते हुए तो व्यक्ति से और भी संवेदनशीलता की उम्मीद की जाती है, पर उनके खिलाफ़ सड़कों पर अचानक जो भीड़ उमड़ आयी, उसके बारे में क्या कहें, उसे किस तरह ज़ायज ठहरायें? मुस्लिम कट्टरवादी पत्थर मारकर महिलाओं की हत्या कर दे रहे हैं। एक वार में लोगों का सिर धड़ से अलग कर दे रहे हैं, और उसे दुनिया भर में लाइव दिखा भी रहे हैं। ट्राउज़र पहनने के जुर्म में लड़कियों पर कोड़े बरसाये जा रहे हैं। कार चलाने के जुर्म में महिलाओं को पीटा और दंडित किया जा रहा है। पूरी दुनिया के लोग इस बर्बरता के साक्षी हैं। एक समय पूरे विश्व में इस किस्म की बर्बरताएं थीं। पर कमोबेश सभी जगहें इन्हें गैरक़ानूनी घोषित किया गया है।

कोई माने या न माने, लेकिन सच यह है कि पिछले दो दशकों में कट्टरवादियों और आतंकवादी संगठनों

की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ गयी है। तालिबान, अल क़ायदा, लश्कर-ए-तैयबा के बाद बोको हराम और आईएस जैसे अनेक छोटे-बड़े आतंकी संगठनों ने अपनी जड़ें जमायी हैं। ये संगठन पूरी दुनिया को दारूल इस्लाम बनाने का ख़्वाब पाले हुए हैं। इस दारूल इस्लाम में सिर्फ़ मुसलमान रहेंगे, दूसरे मजहबों को मानने वालों के लिए इसमें जगह नहीं होगी! प्यू रिसर्च की ताज़ा रिपोर्ट बता रही है कि दुनिया के अधिकांश मुसलमान शरिया कानून चाह रहे हैं। आज पूरी



दुनिया में मुस्लिमों के प्रति एक अजीब किस्म की धारणा बन रही है। मुसलमानों के साथ दोस्ती करने, उन्हें नौकरी देने, उन्हें कारोबार में भागीदार बनाने या उनके साथ सामाजिक रिश्ते रखने के मामले में एक किस्म की हिचक देखी जा रही है। पूरे विश्व में मुस्लिम समुदाय के प्रति अविश्वास जन्म ले रहा है। चूंकि पश्चिमी देशों में मानवाधिकार क़ानून सख्त हैं, इसलिए मुसलमान वहां अपने रीति-रिवाजों का पालन करते हुए भी रह पा रहे हैं। मानवाधिकार क़ानूनों का यह सहारा नहीं होता, तो पश्चिम में मुस्लिम समाज का क्या हश्र होता, इसकी सिर्फ़ कल्पना की जा सकती है।

यदि मनुष्य को अभिव्यक्ति का अधिकार न मिले, तो लोकतंत्र का अर्थ नहीं है। और समाज को बदलने के लिए लोगों की सोच और भावनाओं को भी कई बार निशाना बनाना पड़ता है। राष्ट्र से धर्म को अलग करने और महिला-विरोधी क़ानूनों को ख़त्म करने के क्रम में भी लोगों और संस्थाओं की सोच पर चोट करने की ज़रूरत पड़ती है। बल्कि इतिहास के आईने में देखें, तो समाज के हित में उठाये गये ज़्यादातर क्रम धर्म को निशाना बनाने के बाद ही संभव हुए। यूरोप में धर्म का वर्चस्व ख़त्म करते समय भी कई लोगों की धार्मिक भावनाओं को आघात लगा था। गैलीलियो की स्थापनाओं और डार्विन के निष्कर्षों ने भी धार्मिक भावनाओं को आहत किया था। विज्ञान ने तो

अंधविश्वासों को लगातार आघात पहुंचाया है. पर यदि हम समाज के आहत होने की चिंता कर अभिव्यक्ति पर रोक लगा दें, विज्ञान के आविष्कार और उसके इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाकर सभ्यता के पहिये को रोक दें, तो हमारा समाज बंद तालाब जैसा हो जायेगा.

मजहबी कट्टरता आज बांग्लादेश में खूब फल-फूल रही है. कट्टरवादियों की इसमें पौ बारह हैं. जब-जब वे सड़कों पर उतरकर किसी की फांसी की मांग करते हैं, कुछ लोगों की संपत्ति और घर नष्ट करने की शुरुआत करते हैं, तब-तब सरकार उनका पक्ष लेकर भिन्न धर्मावलंबियों का उत्पीड़न शुरू करती है. ऐसा करके जहां कट्टरवादियों के हाथ मजबूत किये जाते हैं, वहीं समाज को दशकों पीछे धकेल देने का काम किया जाता है. मेरे मामले में भी सरकार ने तब यही किया था. अगर तत्कालीन खालिदा जिया सरकार तब कट्टरवादियों का पक्ष नहीं लेती, तो उनका दुस्साहस आज इतना नहीं बढ़ता, और मैं भी अपने वतन में रह पाती. बांग्लादेश की मजहबी कट्टरता के लिए सिर्फ मौलवी नहीं, सरकारें भी ज़िम्मेदार हैं. अगर प्रधानमंत्री शेख हसीना ने लतीफ़ सिद्दीकी को बर्खास्त नहीं किया

होता, तो वह वतन लौट सकते थे. लोगों का गुस्सा भी धीरे-धीरे ठंडा हो ही जाता. तब मजहबी कट्टरवादियों को भी यह एहसास होता कि शेख हसीना के दौर में उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक चलने की छूट नहीं मिल सकती. इससे बाहर भी बेहतर संदेश जाता.

लतीफ़ सिद्दीकी के बारे में मुझे किसी ने अच्छी बात नहीं बतायी. हो सकता है, वह अच्छे आदमी नहीं हों. यह भी हो सकता है कि सरकार में रहते हुए उन्होंने अच्छा काम नहीं किया हो. हालांकि सत्ता से बाहर होने पर किसी की छवि खराब करने में भला कितना समय लगता है! इसके बावजूद लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का इस्तेमाल कर उन्होंने गलती नहीं की थी. उनकी टिप्पणी से असहमति थी, तो उसे अभिव्यक्त करने का भी लोकतांत्रिक तरीका है. लेकिन उसका इस्तेमाल न कर उनकी फांसी की मांग करने या उनके सिर की बोली लगाने का इस आधुनिक सभ्य युग में क्या कोई औचित्य है?

— बंगलादेश की लेखिका
(‘अमर उजाला’ से साभार.)

माभा परणामु अनुसंधान केंद्र, मुंबई

के भू. पू. वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. बद्धी प्रसाद रस्तोगी

द्वारा रचित पुस्तकें :

१. रत्ना (उपन्यास)
२. धर्मशीला (उपन्यास)
३. जीवन-सत्य (उपन्यास)
४. मेनका (नाटक)

इन्हें आप निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं. डाक-व्यय भी लेखक द्वारा वहन किया जायेगा.

सीमित प्रतियां

: संपर्क :

डॉ. ब. प्र. रस्तोगी

ए-८, बाणगंगा सोसायटी,

गोवंडी स्टेशन रोड, मुंबई-४०००८८.

फ़ोन : (०२२)-२५५६९४१५, ९८२१६११०७४

E-mail : badrirastogi@gmail.com



स्तरीय दोहों का संग्रह : 'सपने हुए कपूर'

✍ जॉ. रामकृष्ण शर्मा

सपने हुए कपूर (दोहा संग्रह) : मधु प्रसाद

प्रकाशक : राहुल प्रकाशन, अहमदाबाद-३८२०१८

मू. २००/-

दोहा, हिंदी काव्य की अत्यंत लोकप्रिय एवं प्राचीन काव्य विधा है। इसीलिए इसका आश्रय लेकर अनेक संत कवियों ने दोहा छंद को यशोमंडित कराया है। खुसरो, रहीम, रैदास, कबीर, तुलसी आदि संत कवियों ने अपने आध्यात्मिक उपदेश एवं भक्ति प्रधान रचनाएं दोहा छंद के माध्यम से जन-जन तक पहुंचायी हैं। घाघ-भड्डरी जैसे मौसम विज्ञानी कवियों ने, आम आदमी एवं कृषकों के लिए मौसम की भविष्यवाणी कर खेती करने के तरीके एवं पशु-पक्षियों के लक्षण दोहा छंद में ही प्रस्तुत किये हैं। वीरगाथा काल में चंद्र वरदाई द्वारा कहा गया यह दोहा भला किसे नहीं मालूम ?

‘चार बांस, चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण ।

ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान ॥

खड़ी बोली की तत्समी भाषायी प्रांजलता एवं तथाकथित प्रगतिशीलों की उपेक्षा के कारण दोहा छंद सभ्यता की दौड़ में पिछड़ता गया। लेकिन विगत तीन-चार दशकों में अनेक समकालीन दोहाकारों ने इस छंद को गीतिकाव्य में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए प्रशंसनीय सृजनात्मक उपक्रम किया है।

वर्तमान में हिंदी की खड़ी बोली में अच्छे दोहे लिखने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इन्हीं यशस्वी दोहाकारों में, समीक्ष्य कृति दोहा संग्रह ‘सपने हुए कपूर’ की रचयिता मधु प्रसाद का नाम भी उभरकर सामने आया है। ‘सपने हुए कपूर’ में कुल ७४२ दोहे हैं।

दोहा में पूर्वा पर कोई प्रसंग न होने के कारण, यह पूर्ण रूपेण मुक्तक विधा के अंतर्गत आता है। प्रत्येक दोहा स्वतंत्र रूप से द्विपदी में ही अपना संपूर्ण भावार्थ प्रकट कर पूर्णता प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक दोहा विषयांतर

बंधन से मुक्त होता है। मधु प्रसाद ने भी विभिन्न विषयों पर दोहे लिखे हैं।

भारतीय परंपरानुसार पहले मां सरस्वती व अन्य देवी-देवताओं के साथ ही तुलसी, सूर, कबीर, मीरा के प्रति अपनी आदरांजलि दोहों के माध्यम से प्रस्तुत की है। यथा

“हंसवाहिनी मां तुम्हें, नित-नित करूं प्रणाम,
कृपा तुम्हारी जब हुई, शब्द हुए अभिराम ।”

“तुलसी जैसा तन मिला, मन ज्यों मस्त कबीर
सूरदास से नयन हैं, मीरा जैसी पीर ॥”

राधा एवं कृष्ण के पावन प्रेम प्रसंगों का आश्रय लेकर ही श्रृंगार रस पल्लवित, पुष्पित हुआ है। वही अनुभूति हमें अधोलिखित दोहे से प्राप्त होती है —

“राधा के तन पर चढ़ा, ऐसा मोहन रंग,
सुध बुध सारी खो गयी, उस रसिया के संग ॥”

भारतीय अध्यात्म दर्शन मानव शरीर को पंच महाभूतों की संयुति मानता है, इन पंचतत्वों का विखंडन होते ही, प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। मानव तन की इसी नश्वरता को कवियत्री ने अधोलिखित दोहे में समझाने का प्रयास किया है।

“पांच तत्व की कोठरी, उसमें बाती एक,

जिस क्षण बाती जल गयी, उस क्षण जगा विवेक ॥”

संसार में मां को प्रथम गुरु एवं देवतुल्य पूज्य माना गया है, ममतालु मां के सम्मान में मधु प्रसाद ने अनेक अच्छे दोहे लिखे हैं। नमूना देखिए —

“मां हर घर की शान है, मां हर घर का मान है ।
सूना जग है मां बिना, मां के बिन निष्प्राण ॥”

हमारे जीवन में बचपन की यादें सदैव रसवंत बनी रहती हैं। अपने बचपन की सुधियों को कवियत्री ने स्मृति बिंब एवं दृश्य बिंब के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है —

“बचपन पीछे रह गया, गये खिलौने टूट ।
वह झूला, वे लोरियां, मां का प्यार अटूट ॥”

आज जबकि कन्या भ्रूण हत्या जैसे क्रूर एवं घृणित दुष्कर्म की खबरें यदा-कदा हमें मिलती रहती हैं तब एक

समझदार एवं जिम्मेदार कवियत्री ने अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए समाज को हितकारी संदेश दिया है —

“बेटी को मारो नहीं, बेटी करो कुबूल ।

जिस घर बेटी जन्म ले, उस घर खिलते फूल ॥”

समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त, झूठ, कपट, छल, पाखंड, शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, गरीबी, भुखमरी जैसी चिंतनीय परिस्थितियों की पीड़ा भी कवियत्री मधुप्रसाद की रचनाओं में देखी जा सकती है। यथा —

“मानव मन को देख लो, आज हो रही हार ।

पल-पल जग में बढ़ रहा, लालच अत्याचार ॥

आज देश में हर तरफ़, अंधियारे की जीत ।

आने वाले दिन भला, कैसे होंगे मीत ॥”

मधु प्रसाद का काव्य निराशावादी कदापि नहीं है। अभी भी प्रकृति की जो मनोहारी छवि-छटाएं बची हैं, उनका अवलंबन लेकर कवियत्री ने ऋतुओं के अनेक मोहक चित्र खींचे हैं। एक अच्छा दोहा देखिए —

“निरख पांडुलिपि शिशिर की, ठिठका रहा वसंत ।

पंखुरी-पंखुरी में बुनी, मन की व्यथा अनंत ॥”

सूर्योदय की सुषमा को, किरणों की झाड़ू के रूपक एवं धूप के मानवीकरण के माध्यम से चमत्कृति प्रदान करने वाला यह दोहा देखिए —

“आंगन में झाड़ू लिये, धूप रही है देख ।

किस कोने में जा छिपी, अंधियारे की रेख ॥”

रागात्मकता तो मानव जीवन की स्वाभाविक प्रकृति है। काव्य में शृंगार को रसराज कहा गया है। भला शृंगार की उपेक्षा कैसे की जा सकती है। कवियत्री मधुप्रसाद ने भी प्रकृति के उपादानों का आश्रय लेकर शृंगार की, संयोग एवं वियोग की दोनों दशाओं का सुंदर चित्रण किया है।

अलग-अलग अनुभूतियां देखिए —

“कुछ बातें मुख से कहीं, कुछ नयनों की कोर ।

तन की पीड़ा बह चली, मन है भाव विभोर ॥

फागुन के घर में लगी, जाने कैसी आग ।

जलन नहीं मिटती भले, खेलो जितना फाग ॥

आंखों को जबसे मिली, उन आंखों से मात ।

दिन अंगूरी हो गये, नशा हो गयी रात ॥”

एक मिथकीय प्रयोग देखिए —

“मन में है कामायनी, भ्रमरगीत है प्रीत ।

प्रिय प्रवास ज्यों ही रुका, आंसू बने अतीत ॥”

यूं तो यह कृति ‘सपने हुए कपूर’ दोष रहित है

तथापि असावधानी के कारण कहीं-कहीं कुछ मात्रिक त्रुटियां रह गयी हैं।

मुझे पूरा विश्वास है कि साहित्य जगत में यह दोहा संग्रह ‘सपने हुए कपूर’ सराहना प्राप्त करेगा। कवियत्री के पास सृजन की अपार संभावनाएं हैं। हार्दिक बधाई एवं आशीर्वाद।

✍️ पिसनहारी, मढ़िया के पास,

जबलपुर-४८२००३.

मो. : ९३००६९३९७५

ताजी बयार चली तो है...

✍️ संतोष श्रीवास्तव

चाय की चुस्कियों में तुम (का. सं.): सुमीता केशवा

प्रकाशक : मानव प्रकाशन, १३१, चितरंजन एवेन्यू,
कोलकाता-७०००७३. मू. २००/-

उत्तराखंड के हरे-भरे परिवेश से आकर महानगर की कंक्रीट और यांत्रिक दुनिया में प्रवेश करने वाली सुमीता केशवा का पहला काव्य संग्रह ‘चाय की चुस्कियों में तुम’ ताजगी का एहसास कराता है। हर युग में कविता के मापदंड बदल जाते हैं। नये-नये प्रतीकों और बिंबों को लेकर कविताओं का सृजन होता है लेकिन अब कविता में जोखिम भी बढ़ गया है। बदलते परिवेश में कविता के धर्म को निभा पाना जटिल ही नहीं चुनौती भरा भी है। एक सौ बत्तीस पृष्ठों के इस काव्य संग्रह में कवियत्री ने यह चुनौती स्वीकार की है। वे एक ऐसे पुल से गुजरी हैं जो दोनों किनारों को जोड़कर नदी की दुर्गमता खत्म करता है। इन कविताओं का एक अपना अलग संसार है। जहां किसी भी तरह के हस्तक्षेप को वे नकारती हैं। उनके इस संसार में यथार्थ के ठोस धरातल पर कल्पना के रंग भी बिखरे हैं, प्रेम का ज्वार भी है तो कटघरे में प्रेम है जो रूह की अदालत में खड़ा है। स्त्री की सच्चाइयां भी हैं।

‘एक नदी बहती है मुझमें भी/ तुम हौले से छू लेते हो / तो तरंगित हो उठती है...’ प्रेम की इस पराकाष्ठा में जब भगीरथ का आगमन होता है तो कितने बहाने बन जाते हैं, हर जगह प्रेम उद्दीपन के। लेकिन वे अपने ढंग से जीना

चाहती हैं... 'बहने दो एक नदी / मुझमें भी गंगा की ही तरह...' वे अपने हिस्से की ज़मीन पे, अपने हिस्से के आकाश पे अपनी तरह से चलना, उड़ना चाहती हैं लेकिन कहीं प्रेम की प्याली के छलक जाने, खाली हो जाने का डर भी है उनमें और इसलिए वे इस प्रेम को समूची कायनात में बिखेर देना चाहती हैं. वे अपनी गुजर चुकी उम्र को भी प्रेम के स्पर्श में ढूंढती हैं... 'तुम्हारे स्पर्श ने मेरी सोयी हुई/ उम्र को जगा दिया जैसे/ खुद को ढूंढने लगी मैं आईनों में कहीं...'

सुमीता जी की कविताएं साहित्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करती हैं. कहीं वे निजीकरण की भेंट चढ़ चुके प्रगतिशील देश के युवाओं को लेकर चिंतित हैं... भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद की संस्कृति में गले-गले तक निमग्न युवाओं का पहला हक बनता है अपने देश पर... वह देश जो बाज़ारवाद की आंधी में अब सुरक्षित नहीं है. पूरी दुनिया ही बाज़ार में ढल गयी है जहां सब कुछ बिकाऊ है. युवाओं की सोच भी, उनके भीतर का तेज भी, दिमाग भी. कहीं कवियत्री पहाड़ों को लेकर चिंतित है और यह कहने पर मज़बूर कि 'पहाड़ों की जवानी की कोई कहानी नहीं होती / खत्म हो जाती है पहाड़ों की जवानी/ दो रोटियों की तोड़ पानी में.' 'पहाड़ की औरत' में वे ये कहने से नहीं चूकतीं कि पहाड़ की औरत देह का विमर्श नहीं जानती. न ही उसे कोई सरोकार है. देह की आज़ादी से उसे तो चाहिए सिर्फ़ भूख से आज़ादी. और इसी भूख से विवश एक मां अपनी बेटी को मायके आने से रोकती है क्योंकि वे कहती हैं... 'पहाड़ की मिट्टी पत्थर बन चुकी है / और पाथरों में कहां उगती है रोटी / मत आना चेली / अब तू मैत मत आना...'

एक ओर वे स्त्री का जन्म लेना ज़रूरी समझती हैं जबकि वे बेटी के पैदा होने से सामंती पिता के विद्रोही तेवरों को भली भांति समझ रही हैं... लेकिन पिता की मनःस्थिति का सारा समीकरण ठहर जाता है जब वे कहती हैं... 'सुनो, पिता के लिबास में/छिपे हुए दंभी 'पुरुष'/यह अच्छी तरह जान लो/और गांठ बांध लो/कि तुम्हें जन्म देने के लिए मेरा (स्त्री का) जन्मना बेहद ज़रूरी है.' तो दूसरी तरफ़ वे धरती की व्यथा कथा से पीड़ित भी. जो द्रौपदी की ही तरह अपने पांच पतियों आकाश,

वायु, सूर्य, जल और चांद के बीच बंटने को मज़बूर तो है लेकिन द्रौपदी की तरह किसी अर्जुन से प्रश्न नहीं कर सकती कि 'क्यों उसका बंटवारा किया गया/बग़ैर उसकी मर्जी के/ पांडवों के बीच...'

संग्रह में स्त्री विमर्श पर आधारित कुछ कविताएं भी हैं. 'बड़ी हो गयी हो तुम' जिसमें वे लिखती हैं... 'अम्मा बड़ी होना तो सिखाया तुमने/अन्याय के विरुद्ध लड़ना/क्यों नहीं सिखाया तुमने?/सिखाया होता तो आज मैं ज़िंदा होती/आज मैं ज़िंदा होती अम्मा...' 'मां तू मुझसे' कविता में वे कन्या भ्रूण हत्या के तहत मां की कोख से आवाज़ उठाती हैं... 'मां तू क्यों मुझसे खफ़ा हो गयी/कोख तेरी मेरी कब्रगाह हो गयी.' 'पता नहीं क्यों' कविता में... 'स्त्री की स्वतंत्रता का/गलत फ़ायदा उठाने लगी हूं/और खुद से ही अप्रसन्न रहने लगी हूं मैं? कहते हुए वे ढूंढती हैं स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ और 'सड़क के किनारे' उस मज़बूर औरत तक पहुंचकर वे ठिठक कर रह जाती हैं, जिसकी सूखी छातियों में दूध नहीं है फिर भी वह विवश है बच्चे पैदा करने के लिए क्योंकि... 'अकेले मज़दूर पति की कमाई से/ नहीं बुझ पाती है सबकी भूख/कमाई के लिए और भी/कई हाथों की ज़रूरत है/इसलिए वह जानती है/हर साल कमाई के लिए/हाड़-मांस के साधन...' यह कविता जिसका मुख्य सरोकार ग़रीबी रेखा के नीचे पल रहे मनुष्यों के लिए सत्ता की नैतिकता की धज्जियां उड़ाना है जो हमारे सामंती तथा बुर्जुआ समाज की सभ्यता तथा संस्कृति के अतल तल में विद्यमान है.

संग्रह का नाम 'चाय की चुस्कियों में तुम' इस नज़रिए से सार्थक बन पड़ा है कि चाय जहां स्फूर्ति और काम करने की ऊर्जा देती है वहीं उसकी कमी की तलब डिस्टर्ब भी करती है. कवियत्री जिस 'तुम' के संग तमाम कविताओं की शब्द यात्रा करती हैं... उस 'तुम' की तलब उनकी कविताओं की आत्मा बन गयी है. इन कविताओं को सिर्फ़ कविता होने की वजह से नहीं, उसमें निहित गहरे और व्यापक प्रेम, सामाजिक आशयों के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए.

✉ २०४, केदारनाथ को. हॉ. सो.,
सेक्टर ७, निकट चारकोप बस डिपो,
कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.
मो. : ९७६९०२३९८८.



समृद्ध कष्टे समुहोपरी करी अग्रे



पृथ्वी का अधिक पोषण भारत की अधिक समृद्धि



छट्टे दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढ़ानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामवासी की जड़े हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मिलित विकास की ओर अग्रसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वासनीय हस्तसंकर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आमनिर्मला आज राष्ट्र की जरूरत है और हम पुनर्वतानुर्ग कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ शेती की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।

हमारे प्रेरणादायी निष्पत्तयन :

- देश के जगणीय उर्वरक निर्माता।
- विछले पीथ दशकों से भारतीय किसानों को सम्मिलित सेवाएँ।
- उर्वरक क्षेत्र में पहली पीथ कंपनीको में स्थान।
- 'उत्कृष्टता' बुरिया, संयुक्त जेनी 'सुकृष्टता' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुकृष्टता', जैविक उर्वरक 'आगोला' सुभ्र पोषक लक्ष्योमाला 'साइकोला' जैसे कई उत्पाद।
- रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।

मविष्य की सह :

- 1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष बुरिया बनाने के लिए विस्तारित परिष्कृतता।
- सीजाइएल, गैस और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालघर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
- मध्य पूर्वी संसाधन समुदाय देशों में बुरिया के लिए संयुक्त उद्यम परिशोधनार्थ स्थापित करना।
- रॉक फॉस्फेट और पेटाटा के लिए लम्बी अवधि का ऑफसेक करार करना।
- निरंतर विकास पर सहायक रूप से ध्यान केंद्रित करना।



राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड

(भारत सरकार का उद्योग)

"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - 400 022. | www.rcfltd.com

Anupkumar Mhatre
Director



PARADIGM
TECHSOLUTIONS PVT. LTD.
Complete Electronic Security Solutions

PARADIGM TECHSOLUTIONS PVT LTD

07, GOLD FILLED PLAZA,
SION BANDRA LINK ROAD,
NEAR ONGC, SION WEST,
MUMBAI – 400 017
TEL / FAX : 022 – 24040 555 [3 Lines]
Email : accounts@pts-pl.com

PUNE BRANCH OFFICE:-

2ND FLOOR, TBI BUSINESS CENTRE,
170, DHOLE PATIL ROAD,
PUNE - 411 001

सीमित अवधि ऑफर

भारतीय स्टेट बैंक
हर भारतीय का बैंक

एसबीआई

HER घर

महिलाओं के लिए होम लोन

होम लोन उनके लिए
जो घर को घर बनाती हैं.



त्योहारों पर
इवांस
पेशकश!

टॉप अप लोन
होम लोन
की दरों पर*

* १५० १५० १५०

कम ब्याज दरों * पर महिलाओं के लिए एसबीआई होम लोन

ब्याज दर
10.10% वार्षिक

एएमआई
₹ 885/लाख*

* 30 वर्ष की अवधि के लिए

* वैकल्पिक घटो से पर ब्याज * वैकल्पिक: ओवरड्राफ्ट सुविधा

SMS 'HOME' TO 567676

प्रोसेसिंग शुल्क माफ

Follow us on:

सहायता के लिए हमारे 24x7 हेल्पलाइन नं. 080-26599990 या टोल फ्री नं. 1800 11 2211/1800 425 3800 पर कॉल करें या हमारे वेबसाइट www.sbi.co.in पर ऑनलाइन करें

मंजुषी द्वारा संपादित व जुनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, लेखपाल इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भावखला, मुंबई - ४०० ०२७. में मुद्रित.
टर्जिन सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां तस्ता, द्वाराका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१